समर्पण

(प्रभु भक्ति के अनूठे गीत)

(भाग-7)

लेखक

ललित साहनी

प्रकाशक

ललित साहनी

फ़्लैट नं. 402, पाम व्यू, सरोजनी रोड,

सान्ताक्रूज़ (प.) मुम्बई-400054

फोन : 64511119, मो. 9892215385

समर्पण (भाग-7) *कवि :* **ललित साहनी**

प्रथम भाग : 183 भजन
द्वितीय भाग : 139 भजन
तृतीय भाग : 62 भजन
चतुर्थ भाग : 144 भजन
पञ्चम भाग : 159 भजन
षष्ठं भाग : 115 भजन
सप्तम भाग : 164 भजन (वर्तमान)
कुल संख्या : 966

© लेखकाधीन सुरक्षित

मूल्य : १०० रुपये – Rs. 100

प्रकाशक : **ललित मोहन साहनी**
फ्लैट नं. 402, पाम व्यू, सरोजनी रोड,
सान्ताक्रूज़, (प.) मुम्बई-400054
फोन : 64511119 मो. 9892215385

संस्करण : सन् 2016 ई.
सृष्टि संवत : 1,96,08,53,116
विक्रमी संवत : 2072
दयानन्दाब्द : 192

मुद्रक : मेहता रवीन्द्र आर्य, अध्यक्ष, ***सरस्वती साहित्य संस्थान, दिल्ली*** *द्वारा, क्विक ऑफसेट, दिल्ली से मुद्रित*

शुभ सन्देश

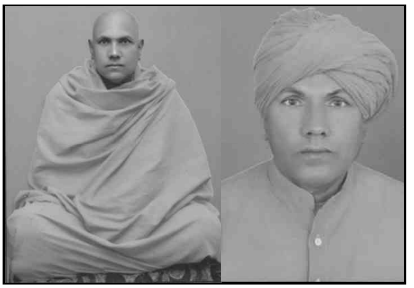

समर्पण पुस्तक के लेखक आदरणीय श्री ललित साहनी धार्मिक, सामाजिक व आध्यात्म वृत्ति के व्यक्ति हैं उन्हें माता-पिता व अपने पितरों से अच्छे संस्कार विरासत में प्राप्त हुये। पितरों द्वारा प्राप्त संस्कारों को सुसंस्कारों में बदलने का काम आपने अपने पुरुषार्थ द्वारा किया। आप महर्षि दयानन्द जी सरस्वती और आर्य समाज की विचारधारा के लिए पूर्ण रूपेण समर्पित हैं। आपने इस पुस्तक का नाम समर्पण रख कर अपने समर्पित होने का प्रमाण प्रस्तुत किया है। आप कई भाषाओं के ज्ञाता हैं। धर्म और ईश्वर के सच्चे स्वरूप को आम आदमी तक पहुंचाने में समर्पण पुस्तक निश्चित रूप से सफल होगी। श्री ललित साहनी जी की रचनायें प्रेरणा दीपक व मार्ग दर्शन करने वाली होती हैं। ईश्वर भक्ति, राष्ट्रभक्ति व आध्यात्मवाद पर आधारित रचनाओं के माध्यम से श्री साहनी जी ने जन जागरण का कार्य किया है। वैदिक विद्वानों के प्रवचन सुनकर व स्वाध्याय के प्रभाव से वह इस मंज़िल तक पहुँचे हैं। वैदिक धर्म के प्रति आपकी निष्ठा और परोपकार की पवित्र भावना आपके व्यक्तित्व के आधार हैं। आप की अनेक कृतियों को पढ़ने वा सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ। आपकी हर एक रचना सिद्धान्तों पर आधारित होती हैं।

आज का मानव ज्ञान-विज्ञान को जानते हुए भी अंधविश्वासों में फँसा हुआ है,—आपकी सुप्रसिद्ध कृति समर्पण—लोगों को अंधविश्वासों से छूटकर सत्य दिखाने में अहम भूमिका निभायेगी। युवाओं का मार्गदर्शन करेगी तथा कवितापाठ करने वालों का दिग्दर्शन करेगी।

—श्री साहनी जी के जीवन का लक्ष्य है—वैदिक धर्म, वैदिक साहित्य व महर्षि दयानन्द जी सरस्वती की विचारधारा का प्रचार-प्रसार

करना। देश-विदेश में भ्रमण करना आपकी रुचि का विषय रहा है। सत्य को अपना शस्त्र बनाकर आपने हजारों कविताओं की रचना की है। आप की गणना वैदिक विद्वानों में होती है। आपका स्वभाव अत्यन्त सरल है। हजारों युवाओं को संगीतज्ञ बनाने में आपकी अहम भूमिका रही है—आप-परमपिता परमात्मा, माता-पिता, आचार्य स्वामी दयानंद जी को अपना गुरु मानते हैं। आप विषम परिस्थितियों में भी प्रसन्नचित्त रहते हैं। स्पष्टवादी व्यावहारिक तथा मिलनसार स्वभाव के धनी श्री ललित साहनी द्वारा लिखित पुस्तक ''समर्पण'' हजारों युवाओं का ठीक-ठीक मार्ग दर्शन करेगी। यह पुस्तक लाजवाब है। मुझे पूर्ण आशा, विश्वास व भरोसा है कि समर्पण पुस्तक समस्त मानव समाज का कल्याण करेगी।

मैं आपके सुखद, मंगलमय, सफल व दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ।

''आपका हितैषी''

श्रद्धा

स्वामी श्रद्धानंद सरस्वती

94162674482, 8053355496

आचार्य

श्रीकृष्ण आर्य, गुरुकुल गोमत

ज़िला-अलीगढ़ (उ. प्र.)

अनुभूत भाव और प्रार्थना

ललित मोहन साहनी

लगातार ६ वर्षों से वैदिक संगीत सीखते हुए गाँधी-धाम आर्य समाज के बालक व बालिकाएँ।

संगीत सम्यक रूप से गीतों का गायन और श्रवण और वादन ही संगीत की परिभाषा दर्शाता है, संगीत चाहे भारतीय हो या विदेशी सामवेद द्वारा दर्शाये 12 स्वरों में समाया है, जिसमें 7शुद्ध स्वर 4 कोमल स्वर और एक तीव्र स्वर होता है विदेशी संगीत में कोमल और तीव्र स्वरों को फ्लैट और शार्प नाम से संबोधित किया गया है। संगीत की उत्पत्ति सनातन काल से है। ब्रह्मनाद की अनुभूति भी संगीत की चरम सीमा है जो आनन्द विभोर कर देती है। सामवेद से उद्गत सभी रागों में शास्त्रीय पद्धति का समावेश है, और प्रत्येक राग मानस पटल पर एक अद्भुत छाप छोड़ देता है और इसके जानकर ध्यान की अवस्था में चले जाते हैं। हर राग का अलग-अलग समय है।

मैंने स्वयं इस अवस्था को अनुभूत किया है। इसी अनुभूति को ओशो (रजनीश) जी ने अपने दसवें प्रवचन में यों व्यक्त किया 'ध्यान का सरलतम मार्ग संगीत है' जिसका मैं भी पूर्ण रूपेण समर्थन करता हूँ।

मेरे माता-पिता और मैं स्वयं बचपन से ही आर्यसमाज को जाते थे और तदुपरांत प्रकाश जी तथा नन्दलाल जी के सरल गीतों को गाता था। इस प्रवृत्ति ने मुझे आगे चलकर शास्त्रिय संगीत की ओर अग्रसर किया विशेष कर फिल्मी संगीत में अधिकतर शास्त्रीय रागों

का समावेश था जिन्हें सतत् सुनकर मैंने बिना किसी से सीखे स्वयं इन शास्त्रिय रागों को आत्मसात किया और रागों की धाराओं में बहकर जीवन में अद्भुत आनन्द प्राप्त किया, इसे मैं पूर्णतः परमेश्वर की कृपा ही समझता हूँ किन्तुपरमेश्वर ने उपकारों की वर्षा करनी तब प्रारम्भ की जब मेरी रूचि गीतकार बनने की हुई सन् 1962 में मैंने 3 भजनों की रचना की, 1963 में 7, 1969 में 1, 1975 में 1, 1991 में 3 1994 में 2, 1995 में 20 यहाँ से परमेश्वर ने मेरा उत्साहवर्धन किया और 1996 में 34 भजनों की रचना कर दी, मन ही मन मैंने प्रभु से प्रार्थना की कि 100 भजन मेरी झोली में डाल दीजिए और मेरे प्यारे साथियो ईश्वर की कृपा देखो आज तक 1313 भजन सभी शास्त्रीय रागों पर आधारित, मेरी झोली में डाल दिये मानो परमेश्वर कह रहा हो, ललित तेरी झोली छोटी पड़ जायेगी मेरी कृपा नहीं 1997 में मैने वैदिक ग्रन्थ और पुस्तकों का स्वाध्याय करना आरम्भ किया, महर्षि स्वामी दयानन्द का वेदभाष्य, वैदिक विद्वानों और संन्यासियों की वैदिक मंत्रों की पुस्तकें, वैदिक विनय, स्वाध्याय संदोह, वेद, मञ्जरी, वैदिक पुष्पांजली,वैदिक मधुवृष्टि वैदिक प्रार्थना सौरभ, स्वाध्याय संदीप, वैदिक रश्मि, वेदाध्ययन के चुने हुए फूल, सोम सरोवर (चमुपति जी) जीवन ज्योति, स्वाध्याय संदीप वरुण की नौका वेद गीताञ्जली इत्यादि और अनेक पुस्तकों द्वारा वेद मंत्रों का गहन अध्ययन किया। मंत्रों के भावों को आत्मसात करने का प्रयत्न किया और ईश प्रार्थना और पुरुषार्थ से परमेश्वर का आशीश प्राप्त किया समर्पण भजनों के छः भाग छप चुके हैं। जहाँ मुझे ईशकृपा की अद्भुत प्रसन्नता प्राप्त हुई वहाँ एक बात का दुःख भी है वो इसलिए कि मैं आर्य समाज से बचपन से ही जुड़ा हुआ हूँ, आर्यसमाज में संगीत को लेकर प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से उदासीनता है। कोई विधिवत संगीत को सीखना नहीं चाहता, पुस्तक उठाई और गाना शुरु किया और देखते ही देखते बेसुरेपन का वातावरण छा गया। आज संगीत या भजन सुनने के लिये गायक चुटकुलों का,दृष्टांतों का प्रयोग करके जो सुरसंगीत का सुमधुर रस है उसकी अवहेलना कर रहे हैं। कुछ आर्य समाजें टीका टिप्पणी में लगी हुई हैं। ये धुन यहाँ से लो, वहाँ से लो, फिल्म से लो इत्यादि। इसके पीछे क्या प्रयोजन हो सकता है यह मेरी समझ से बाहर है, यदि धुनें शास्त्रिय

रागों पर आधारित हैं तो यह फिल्मों की देन कुछ मायनों में हो सकती है किन्तु वास्तव में यह देन रसमय सामवेद की है और महर्षि का वाक्य है ।सत्य के ग्रहण करने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये। जब रुपया पैसा जमा करना होता है तो फिल्म कलाकारों को बुलाया जाता है। जिसे मैं बुराई करते सुनता हूँ। इस प्रकार आर्य समाज सीमित ही रह जाएगा। यह मेरी आँतरिक वेदना है। हमें सभी कलाकारों को आर्यसमाज से जोड़ना है। आर्यसमाज अन्धेरी (मुम्बई) में फिल्मकार धर्मेन्द्र जी को बुलाया जाता है आज वह पूर्णतः आर्य समाज के विचारों से ओतप्रोत हैं। मैंने स्वयं अपनी सुपुत्री के केसेट और सी. डी. को लिये श्रीमती माला सिहा को आमन्त्रित कर आर्यसमाज सान्ताक्रूझ में रीलीज़ किया। मेरी समर्पण पुस्तक का भी विमोचन हुआ।

लोग महर्षि दयानन्द से सीखें, भजन गायक शराबी होते हुए भी वह युगपुरुष केवल प्रेम नहीं, अपितु भाग्य भी बदल देते थे।

आज आवश्यकता है आर्यसमाजों में शास्त्रिय संगीत की शिक्षा की जिससे विभिन्न रागों द्वारा एक रसमय वातावरण बनें, सुरीलापन आये, सुनने वाले रसिकों का भी मन भाव विभोर होवे और परमात्मा की भक्ति में डूबने का आनन्द आये। 12 वर्षों से आर्यसमाज सांताक्रूज में संगीत की कक्षायें चल रही हैं।

मैं 6 वर्षों से आर्यसमाज गाँधीधाम में आचार्य वाचोनिधि की अध्यक्षता में वहाँ के बालक, बालिकाओं को वैदिक शास्त्रिय संगीत की शिक्षा दे रहा हूँ किन्तु इतनी विशाल आर्यसमाजों के लिये एक व्यक्ति काफी नहीं। घर घर स्वरों का विविधवत शिक्षण प्रारम्भ होना चाहिए। उपदेश आधे घण्टे से अधिक लोग सुन नहीं पाते किन्तु यदि रसमय संगीत को उपदेशों के साथ विधिवत जोड़ दिया जाये तो आने वाले समय में अधिक से अधिक लोग स्वतंत्रता से आर्यसमाजों में जुड़ना शुरु होंगे, इसलिये आज के संदर्भ में, मैं सभी आर्य समाजी लोगों को आवाहन करता हूँ कि स्वरों की साधना किस प्रकार की जाए कि हृदयों से सुमधुर स्वर लोगों को भक्तिरस से आप्लावित कर दे, जानना और मानना आवश्यक है। आप सबका आभारी

ललित मोहन साहनी

402 पाम व्यू, सरोजनी रोड, सान्ताक्रूझ (पश्चिम) मुम्बई-400054

अनुक्रमणिका

धुन	न.	शीर्षक	भजन	मन्त्र	वेद	अन्य	अन्य	पृष्ठ
प	1	एक वृक्ष नी उपर बे	पंखीड़ा ने उड्या विना	द्वा सुपर्णा सयुजा सखा	ऋ			18
प	2	चिकने कटोरे	ऐ मेरे मनमोहन मधु	पवस्व सोम मधुमाँ	ऋ	साम	-	19
प	3	वह सब सुनता देखता है	तुमने कभी कहा प्रभु से	नकीमिन्द्रो निकर्तवे	ऋ	-	-	20
प	4	हमारी पुकार	जगत विधाता प्रभु सुख	आधागमद्यदि श्रव	ऋ	अथ	साम	21
प	5	उस दर्शनीय को मैंने देखा	प्रभु तेरे दर्शन हो गए	दर्शनु विश्वदर्शतंरथ	ऋ	-	-	22
प	6	दो प्रकार की उत्तम स्तुतियाँ	करना प्रसन्न परमेश्वर	स धा नो देवः सविता	अथ	-	-	23
प	7	भौतिक तथा दिव्य दृष्टि	दिव्य वृष्टि बरसाने वाले	सनो वृष्टिं दिवस्परि	ऋ	-	-	24
प	8	देवाधिदेव महादेव परमात्मा	सृष्टि के नियम हैं सनातन	सच्चिद्धि शश्वता तना	ऋ	साम	-	25
प	9	दिव्य पूर्णमासी	उदित हुई है पूर्णमासी	पूर्णा पश्वादुतापूर्णा	अथ	-	-	26
प	10	ध्यानी बुद्धि से कर्म को	जीवन ही संग्राम कहाये	जातो जायते सुदिनत्वे	ऋ	-	-	27
पा	11	मित्र के मार्ग से गति प्राप्त	मित्र है प्यारा प्रभु हमारा	यन्नूनमश्यां गतिं	ऋ	-	-	28
पा	12	हम निष्पाप होके तेरे प्यारे	काबिल बनूँ काबिल	कितवासो यद् रिरिपूर्न	ऋ	-	-	29
पा	13	वह इन्द्र	हज़ारों कई लाखों के नेता	इन्द्रइन्नो महानां	ऋ	-	-	30
पा	14	सद्पुरुषों के सहयोग	हे परमेश्वर लालसा जगा	अथा ते अन्तमानां	ऋ	-	-	31

धुन	न.	शीर्षक	भजन	मन्त्र	वेद	अन्य	अन्य	पृष्ठ
पा	15	परिछिन्न आत्मा	परिछिन्न आत्मा है ईश्वर	अव्यसश्च वयचश्च	अथ	-	-	32
पा	16	शुभ एवं बलवान संकल्प	जाना नहीं जीवन का	आकूतिं देवीं सुभगां	अथ	-	-	33
पा	17	हम सर्वत्र मातृभूमि के...	तेरे लिये उत्तम वाणी	ये ग्रामा यदरण्यं याः	अथ	-	-	34
पा	18	चलता फिरता अपाहित	कर ले मन तैयारी हाँक	तं गूर्धया स्वर्णरं	साम	-	-	35
पा	19	कुशल सारथी की महिमा	रथ में बैठा रथी अश्व को	रथ तिष्ठन्नयति	ऋ	यजु	-	36
पा	20	सोमदेव का हृदय मंदिर	प्रभुजी आओ हृदय में	सोम रारन्धि नो हृदि	ऋ	-	-	37
पि	21	उपदेशकों का गुरु	तू है गुरुओं का गुरु	शतधार मुत्सम क्षीय	ऋ	-	-	38
पि	22	हम दिव्य भगवान का वरण	इत उत मन तू ना विचर	सखायस्त्वाक्वृमहे	ऋ	साम	-	39
पु	23	कर्तव्य की कसौटी	ऐ मानव कर कर्तव्यपालन	देवस्य सवितुः सवे	अथ	-	-	40
पु	24	कुछ बून्दें हम पर भी	अमृत छलका दे प्यासा हूँ	मध्वः सूदं पवस्व वस्व	ऋ	-	-	41
पु	25	प्रेरणा	आत्मवान तू है रणबाँकुरा	यशस्व वीर प्र विहि	ऋ	-	-	42
पु	26	प्राणदाता	पूर्व हो या पश्चिम ऋजु	अबुध्ने राजा वरुणो	ऋ	-	-	43
पु	27	अजर अमर सन्तान	हो रही है प्रतीति मुझे आज	एना वो अग्नि नमसो	ऋ	साम	-	44
पु	28	सूर्य किनके प्रति उदित	तुम आओ हृदय के प्रांगण	उद्वेदभि श्रुतामधं वृष	ऋ	साम	-	45
पु	29	अन्न से अत्ता	जीवन चमत्कार आश्चर्य	आ पवस्व सहस्त्रिणं	साम.	-	-	46
पु	30	प्रेम से भरकर उसके गीत	आ जाओ तुम भी आ जाओ,	प्रसम्राजे बृहदर्चा	ऋ	-	-	47
पु	31	सृष्टि के तत्व भगवान के	मनमानी करें क्यूँ, सत्यमार्ग	अहं भूमिम ददाभार्थ्मा	ऋ	-	-	48

धुन	न.	शीर्षक	भजन	मन्त्र	वेद	अन्य	अन्य	पृष्ठ
पु	32	सन्यासी के समान पाप हन्ता	बन जाओ तुम भी आ जाओ	इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो	ऋ	-	-	49
पु	33	आओ देवों के मार्ग पर चलें	यज्ञ के तंतु से बँधे रहना	आ देवानामपि पन्था	ऋ	अथ	-	50
पु	34	रथारोही का उद्‌बोधन	मानव जाग जीवन को उच्च	यं कुमार नवंरथमचक्रं	ऋ	-	-	51
पु	35	आत्मन् यज्ञ का संचालन	हे आत्मन् नींद से जाग	इयं नो अग्न उपयज्ञमेहि	ऋ	-	-	52
पु	36	अमतिं क्षुधा निर्धनता	अमति निर्धनता त्रुटियाँ	गोभिरिष्टरेमा मतिं	ऋ	-	-	53
पु	37	दोहरा प्यार	पूजा था तुम्हें पिता मानकर	प्राणा शिशु महीनांहिन्व	साम	-	-	54
पु	38	हम सखाओं की सुध लेा	अर्पण करते कृतज्ञता को	अभिख्या नो मधवन नाध	ऋ	-	-	56
पू	39	हम स्वप्न में भी सदा निर्भय होंवे	क्या कारण है प्रभु जी	यो मेराजन्दुज्यो वा	साम	-		57
पू	40	अग्नि होत्र	आग जलाई हमने इसलिये	राये अग्ने महे त्वा दान	साम	-	-	58
पू	41	सदा पवित्र सदा निष्पाप	गौओं में पवित्रपन है जो	सदागवः शुचयो विश्व	साम	-	-	60
पू	42	देव मुझे पवित्र करें	ढूँढ़ता हूँ मैं वे लोग जिनसे	पुनन्तुमा देवजनाः	अथ	ऋ	-	61
पो	43	इन्द्र की अर्चना	हे मेरे प्राणों के प्राणपति	इन्द्रा यिन्दोमरुत्वते	ऋ	साम	-	63
पो	44	जीवन की रात में जिसे	हे करुणाकर हे भगवन्	आरे अस्मद मतिमारे	ऋ	-	-	64
प्र	45	ब्रहस्पति का सखित्व	हे परमेश ब्रहस्पति!	त्वया वयमुत्तमं धी	ऋ	-	-	65
प्र	46	कहाँ जायें?	दृष्टि दे दो हे आत्मन्	वयः सुपर्णा उप सेदु	ऋ	साम	-	66
प्र	47	तिनके	जीवन ज्योति हे अग्ने	अग्ने मृळ महाँ असि	ऋ	साम	-	67
प्र	48	ज्योति कभी हमसे दूर ना हो	ऐ मेरे मन अनमोल है	मानो व धैवरुणये	ऋ	-	-	68

धुन	न.	शीर्षक	भजन	मन्त्र	वेद	अन्य	अन्य	पृष्ठ
प्र	49	त्वदीय वस्तु गोविन्द	प्रतिनियम से प्रतिदिवन्	अयमग्नि सुवीर्यस्ये	ऋ	साम	-	69
प्र	50	हे अग्ने!	अग्निदेव कल्याण प्रदाता	पदं देवस्य नमसा	ऋ	-	-	70
प्रा	51	प्रवाह बढ़ता रहे	प्रार्थना सुनिये श्री भगवान	त्वा मिद्धि त्वायवो	ऋ	-	-	71
प्रि	52	तेरी देन को कोई रोक नहीं	रख के सम्मुख लक्ष्य को	न ते वर्तास्ति राधस	ऋ	-	-	72
प्रि	53	उठ!	हे जीव तू जाने ना	सुपर्णोऽसिगरुत्मान	यजु	-	-	73
प्रि	54	तेरी इच्छा	अधिपति अनुभवी प्रिय	अभ्रातृव्यो अना त्व	ऋ	अथ	-	74
प्रि	55	कवियों का गीत	अनुस्मृति अनुकृति	परिकोशं मधुश्चुतम	ऋ	साम	-	75
प्रि	56	पाप के छः कारण	प्रभु मेरे प्यारे हृदय में	न स स्वोदक्षो वरुण	ऋ	-	-	76
प्रि	57	भगवान के दान की निन्दा मत	किसके लिए है ये सारा	मा निन्दत य इमां	ऋ	-	-	78
प्रि	58	उसकी सब प्रशंसा करते हैं	चलो मिलके हितकर्ता	विश्वपतिं यह्वगति	ऋ	साम	-	80
प्रि	59	आग को आग समझो	कर्म तो मानव करे कर्म में	अग्निमिन्धानो मनसा	ऋ	-	-	81
प्रे	60	द्वेष से दूर	अपमान देवों का करना है बुरा	त्वं नो अग्ने वरुणस्य	यजु	-	-	82
प्रे	61	देवदूत	जब से मेरे हितु-हृदय में	अग्निं दूतं वृणीमहे	ऋ	साम	-	83
फु	62	त्याग पूर्वक भोग	निर्ऋतेरे हे माते!	यस्यास्त आसनि	अथ	यजु	-	84
ब	63	प्रभु तेरी कृपा का एक कण	श्रेष्ठ मार्ग की मति तू दे	दिवो नु मा बृहतो	अथ	-	-	85
ब	64	सच्चे यश की नाव	आओ खेल खेला जाए धन	आ नो अग्ने वयोवृधं	ऋ	साम	-	86
ब	65	सर्वदृष्टा-सर्वशक्तिमान	हे मानव किस किसकी	य एक इत्तुमुष्टुहि	ऋ	-	-	87

धुन	न.	शीर्षक	भजन	मन्त्र	वेद	अन्य	अन्य	पृष्ठ
बा	66	जो तुम्हारे भले के लिए देता है	देखो भाई कितना देते	प्रस क्षयं तिरते	ऋ	-	-	89
बाँ	67	भेंट का अभाव	दया दृष्टि मेरी ओर, कर	प्रपुनानाया वेधसे	ऋ	साम	-	90
बाँ	68	सरस यज्ञ	जागृति मेरी जब से	पुनानः सोम जागृवि	ऋ	साम	-	91
बो	69	अनमोल वाणी	बोल वाणी बोल, बोल	मधुमन्मे निक्रमणं	अथ	-	-	92
ब्र	70	जागते रहो	ब्रह्मा नन्दी जाग्रत स्वामी	यो जागार तमृचः	ऋ	साम	-	93
ब्र	71	प्रभु के गीत गाओ	आओ मित्रों गायें मिलकर	प्रमंहिष्ठाय गायत	ऋ	-	-	94
भ	72	श्रद्धा का रहस्य	श्रद्धा के फूलों की	श्रद्धयाग्नि समिध्य	ऋ	-	-	95
भ	73	श्रद्धा का रहस्य	श्रद्धावान दानी भलाई	प्रियं श्रद्धे ददतः	ऋ	-	-	96
जन	74	श्रद्धा का रहस्य	श्रद्धाबल करता दिव्य	यथा देवा असुरेषु	ऋृ	-	-	97
जन	75	श्रद्धा का रहस्य	श्रद्धा में अर्पित श्रद्धावान	श्रद्धा देवा यजामना	ऋ	-	-	98
जन	76	श्रद्धा का रहस्य	हे श्रद्धा आओ प्रातः काल	श्रद्धा प्रार्तहवामहे	ऋ	-	-	99
पति	77	श्रद्धा का रहस्य	हम अपने व्रत के द्वारा	व्रतेन दीक्षा-दृष्ट्वारूप	यज्ञ	-	-	100
भ	78	वह बड़ा है	ना बड़ा ना कोई छोटा	अज्येष्ठासो अकनि	ऋ	-	-	101
भ	79	उद्धार का मार्ग	यज्ञकर यज्ञकर कर्म तू	अग्निमिन्धानो मन	ऋ	साम	-	102
भी	80	तत्वदर्शी तेरी शोभा से	भीतर अनन्त प्रकाश	तव श्रिया सुदृशो देव	ऋ	-	-	103
म	81	धर्ममेघ का आवाहन	पड़ा नालियों में जल	वृषा ह्यसि भानुना	ऋ	साम	-	104
म	82	त्रिविध महान ऐश्वर्य	मेरा मन तेरे गुण क्या	प्रमंहिष्ठाय बृहते	ऋ	अथ	-	105

धुन	न.	शीर्षक	भजन	मन्त्र	वेद	अन्य	अन्य	पृष्ठ
म	83	तेरे स्तोता को भय ना	हे ईश्वर तुम अग्नि हो	पाहिनो अग्ने पायुभिः	ऋ	-	-	106
म	84	तेरे सखा को क्या मिलता	हे परमेश्वर इन्द्र हो तुम	अश्वी रथी सुरूप इद	ऋ	-	-	107
म	85	मस्त मनीषी	संयम में है मस्ती	अभिसोमास आयंव	ऋ	साम	-	108
म	86	पूर्ण परमात्मा	आओ हम सब से जानें	पूर्णात्पूर्णमुदचति	अथ	-	-	109
म	87	मैंने वेदमाता की स्तुति की	मैंने वेदमाता की स्तुति	स्तुता मया वरदा वेद	अथ	-	-	110
म	88	उषाओं के आगे चमकने वाला	आओ हम अग्निदेव	श्रीणामुदारो धरुणो	ऋ	-	-	111
म	89	उत्तम गुण मुझमें आयें	हे देवो जीवन के यज्ञों में	यज्ञस्य चक्षुः प्रभृति	अथ	-	-	112
म	90	ऐश्वर्य पाना चाहता हूँ	परमैश्वर्यवान इन्द्र तुम्हारा	यद्विग्नविन्द्रयस्थिरे	साम	अथ	-	113
म	91	पावनकर्ता तेरी देदीप्यमान	मेरे सच्चे प्रभुवर सर्वहित	पवित्रेण पुनीहि मा	यजु	-	-	114
म	92	मधुशास्त्र विद्या की महा	माधुर्य प्राप्ति में लगा हूँ मैं	जिह्वा या अग्रेमधु	अथ	-	-	115
म	93	प्रभु प्राप्ति का उपाय	संग कर शुभ योग से	मूर्धानमस्य संसीव्याथ	अथ	अथ	-	116
म	94	तेरी अनन्त कृपा	तू कितना कृपालु है	विद्माहित्वा तुविकूर्मि	साम	-	-	117
म	95	घोड़ों को प्रसन्न करो और	अश्व करो रे प्रसन्न	प्रीणीताश्वान्हित	ऋ	-	-	118
म	96	पाप की अन्तिम झाँकी	ठाठें मार रहा है, मेरे	उपध्नन्पवतेमृधा	ऋ	-	-	119
म	97	मन की शक्तियों का आवाहन	मन चन्द्रमा सा है जानें	मनसे चेतसे धिय	अथ	-	-	120
म	98	दिव्य वर्षायें	बरसे बरसे मेघा बरसे	मिहः पावकाः प्रतता	ऋ	-	-	121
म	99	पृथ्वी धारक	वसुधा हमें उन्नत करे	सत्यं बृहद्दतमुग्रं	अथ	-	-	123

धुन	न.	शीर्षक	भजन	मन्त्र	वेद	अन्य	अन्य	पृष्ठ
म	100	दूरित दूर करके ऐश्वर्य प्रदान	बनते-बनते बात बिगड़ती	अति नि हो अति सृधो	अथ	-	-	124
म	101	धनी दरिद्र दोनों उसके याचक	संसार में नहीं कोई धन	अस्य शासु रूभयास	ऋ	-	-	125
म	102	आर्य और दस्यु की पहचान	हे इन्द्र राजन निज साम्रा	विजानी ह्यार्यान्ये	ऋ	-	-	126
म	103	आओ हम लौटें	आओ लौटें अंतःकरण में	न तं विदाथ य इमा	ऋ	यजु	-	127
म	104	यज्ञ और मन के लिये	यज्ञ हैं कई और सब हैं	ते वो हृदे मनसे सन्तु	ऋ	-	-	128
म	105	इन्द्र के महल को	जान मेरी ऐ सोम सरि	अपघ्नन्पवते मृधो	ऋ	साम	-	129
म	106	साथी बनो	मन उन्नति करके रह	त्वां जना मम सत्ये	ऋ	अथ	-	130
म	107	यात्रा सफल हो	कई बार हम चाहते वाज	अवा नो वाजयुं रथं	ऋ	-	-	131
म	108	भगवान का भला रूप	जब से रहस्य जाना यज्ञ	यज्ञा यज्ञा वो अग्नये	ऋ	साम	-	132
म	109	संसार का उत्पादक ही सुकर्मा	प्रभु है सुकर्मा, अधर में	स इत्स्वपा भुवनेष्वा	ऋ	-	-	134
म	110	वह सर्वहितकारी है	जग की आँख है अंशु,	तच्चक्षुर्रेवहितं पुरस्ता	ऋ	यजु		135
म	111	गाँठ खोल	हृदय गाँठ खोला करो ना	ग्रन्थिं न विष्य ग्रथि	ऋ	-		136
म	112	तेरे कान चारों ओर से	कही जिसे मनोव्यथा	उतत्वाबधिरं वयं	ऋ-	-		137
म	113	हम सत्यवादियों की शरण	सुख बरसाओ आदित्यो	ऋतावान-ऋतजाता	ऋ	-	पृ.	138
म	114	शरीर की नदियों को बहा	हृदय सिन्धु से रक्त	को अस्मिन्नापो व्यद	अथ	-	-	139
मा	115	सच्चा पूर्ण आस्तिक ही	जानो अहिंसा अहिंसा	उदगादयमादित्यो	ऋ	-	-	140
मा	116	रथ आगे बढ़े!	हे इन्द्र मेरे रथ की रक्षा	इन्द्र प्रणो रथभव	ऋ	-	-	141

धुन	न.	शीर्षक	भजन	मन्त्र	वेद	अन्य	अन्य	पृष्ठ
मा	117	भूमिमातः	भूमिमात पुत्र हैं तेरे	उपस्थाते अनमीवा	अथ	-	-	142
मा	118	अश्रद्धावान पिछड़ जाते हैं	धर्म और कर्म विहीन	न्यक्रतून ग्रथिनो	ऋ	-		143
मा	119	जब कोई धूप से व्याकुल	जब कोई धूप से होता है	उपच्छायामिव घृणे	ऋ	साम		144
मा	120	बँधे हुए भी बन्धन रहित	हे जगदीश्वर तुम पुरुशाक	शचीवतस्ते पुरुशाक	ऋ	-		145
मा	121	मन की शक्ति	मन की शक्ति दो	आ त एतु मनः पुनः	ऋ	-		146
मा	122	भूमिमाता की महती महिमा	भूमि माता राज्यवान है।	वाजस्य नु प्रसवे	यजु	-		147
मा	123	अभीष्ट फलदाता	सूक्ष्म से सूक्ष्म ये जीव	अघा हिन्वान इन्द्रियं	ऋ	-		148
मा	124	आत्मा का स्वराज्य	कर्मफल भोगने आया	अत्रिमनु स्वराज्य	ऋ	-	-	149
मा	125	जंगम स्थावर का राजा	मैं अपने इन्द्र प्रभु का	इन्द्रो यातोऽवसित	ऋ	-		150
मा	126	सुखकारी बना	हमारे हृदयों में आकर	सुशेवा नो मृळया	ऋ	-		151
मा	127	जीव के लिए सारा संसार	प्यार प्रभु तुमसे करता	तुभ्येमा भुवना कवे	ऋ	-		152
मा	128	भगवान के क्रोध को	आ प्रभु से बाँध प्रीत	अयं ते हेको वरुण	ऋ	-	-	153
मा	129	कब तेरी चेतना हमें मिलेगी	हे जगत के ज्योति पुञ्ज	अग्ने कदा त आनुषग्भु	ऋ	-		154
मा	130	हे सोम!	भक्त तेरा बन गया	हृदि स्पृशस्त आसते	ऋ	-	-	155
मा	131	हे समर्थ परमेश्वर	भाजन बन जाऊँ मैं तेरा	द्दते दृंह मा ज्योक्ते	यजु	-	-	156
मा	132	दिव्य आचमन	माहिन आनन्दन पर ब्रह्म	शंनो देवी रभिष्टयेशं	यजु	-	-	157
मि	133	परम प्रिय परमेश्वर	तरणी लगा प्रभु खेवन	स नः पप्रिः पारयति	ऋ	-		158

धुन	न.	शीर्षक	भजन	मन्त्र	वेद	अन्य	अन्य	पृष्ठ
मि	134	हरि को हरि बनने दो	हरि भक्ति में मन को	कनिक्रान्ति हरिरा	साम	-		159
मी	135	दिव्य नौका	पानी में बाढ़ भारी	रथाय नावमुत नो	ऋ	-		160
मी	136	स्वामी से कौन नहीं माँगता	हे इन्द्र सदा मैं कुछ	मा त्वा सामस्य	ऋ	-	-	161
मी	137	दैव्यजन और मनुष्य जन	तुम दैव्यमन हो हे वरुण	यत्किं चेद वरुण	ऋ	अथ		163
मी	138	वाणी की शक्ति	ये धीर पुरुष बोलते	सक्तुमिव तितउना	ऋ	-	-	164
मी	139	ऐश्वर्य दो	हे सहसावन् तू महान है	यमग्ने रयिं सहसा	ऋ	-	-	165
मी	140	मित्र और वरुण की स्तुति	गीत स्तुति गाये ये वाणी	प्र वो मित्राय गायत	ऋ	साम	-	166
मु	141	गगन में तारे जोड़ने वाला	महत्ता तुम्हारी भला कैसे	आ प प्रौ पार्थिवं रजो	ऋ	-		167
मु	142	अहर्निश प्रवृत्त स्तोम	प्रभु तेरी महिमा हम	मम त्वा मूर उदिते	ऋ	-	-	168
मु	143	हे राजन वचन दो	सत्यवचन वाचाल का	त्वं विश्वस्य मेधिर	ऋ	-	-	169
मु	144	कहाँ भगवान किसने उसे	स्तुति करो वाचाल मन	प्रसुस्तोमं + अयमस्मि	ऋ	-	-	170
मु	145	प्रभु कृपा का भागी	उत्तम प्रभु शरण मिलती	त्वं तमग्ने अमृतत्व	ऋ	-	-	171
मु	146	विश्वरथ का रथि	दर्शन न ऋषियों का जाता	इन्दुः पविष्ट चेतनः	ऋ	साम		172
मु	147	हे मित्र मुझे क्यों मारना	मुझे मत मारो हे तारक	किमाग आम वरुण	ऋ	-		173
मू	148	सौन्दर्य की याचना	साधक के सद्गुणों की	वाममद्यसवितर्वामम	ऋ	-	-	175
मू	149	आत्मा और इन्द्रियों का संबंध	ये जो इन्द्रियाँ हैं करे भला	समीचीनास आसते	ऋ	-	-	176
मृ	150	हे भद्र सोम!	हे सोम सितान्शु	त्वं सोमासिसत्पति	ऋ	-	-	177

धुन	न.	शीर्षक	भजन	मन्त्र	वेद	अन्य	अन्य	पृष्ठ
मृ	151	हे ज्ञानमय सोम!	आत्मा को दर्शन की चाह	यत्र ज्योति रजस्त्रं	ऋ	-	-	178
मृ	152	हे दिशाओं के पालक	ज्ञानमय भक्ति भाव	आ पवस्व दिशां पत	ऋ	-	-	179
मे	153	अकेला जाना होता है	परलोक में तो केवल	यमस्य लोका दध्या	अथ	-	-	180
मे	154	आध्यात्मनुभव	साधक की साधना	शृण्वे वृष्टेरिव स्व	साम-	-		181
मे	155	हम किसके नाम का स्मरण	तेरी लीला उत्तम न्यारी	कस्य नूनं कतमस्या	ऋ	-	-	182
मे	156	धर्म के लक्षण	ऐ प्यारे मनुष्य लोगो	सं गच्छध्वं सं वदध्वं	ऋ	-	-	183
मे	157	धर्म के लक्षण	ऐ प्यारे मनुष्य लोगो	समानो मन्त्रः समितिः	ऋ	-	-	184
मे	158	धर्म के लक्षण	ऐ प्यारे मनुष्य लोगो	समानी व आकूतिः	ऋ	-	-	185
मै	159	हम कर्म करें	तुम्हारे बताये ही कर्म	ते घेदग्ने स्वाध्यो	ऋ	-	-	187
मै	160	प्रभु को आर्य ही प्राप्त कर...	तू तो इक आर्य है	मूर्धा दिवो नाभिरग्नि	ऋ	-	-	188
मै	161	देखो सोमप्रभु की अनोखी	दीख रहा है विश्वव्यापी	अयं द्यावा पृथिवी	ऋ	-	-	189
मै	162	व्यापक सोम	वाणी में जादू तो संत	असृक्षत प्रवाजिनो	ऋ	-	-	190
मो	163	व्रतपालकों के सखा	कोटि-कोटि धन्यवाद	विष्णोर्नु वीर्याणिप्र	ऋ	-	-	191
मो	164	भगवान परिश्रमी की	मेरा मेरा में ही भरा	यस्तइध्मं जभरत्सि	ऋ	-	-	192

1. एक वृक्ष नी उपर बे पंखियो

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाछत्त्यनश्नन्न्यो अभि चाकशीति॥ *ऋ. १.१६४.२*

643 तर्ज : *पंखिड़ा ने आ पींजरूँ (गुजराती भजन)* MP3

देह नुं धार्यूं पींजरूँ हवे शुं एनूं काम
जनम ना थाक्या हंसला, उड़ी जा ले विश्राम॥

पंखीड़ा ने उड्या विना सूनूं सूनूं लागे
मड्युं छे पंख एक ज्ञान नूं, बीजूं कर्म माटे॥पंखिड़ा ने॥

वृक्ष अेटले आ जगत्, अथवा तो शरीर (२)
एना पर बेठा पंखियो, ब्रह्म, बीजो जीव
ब्रह्म बेठो भोग विना ने जीव फड़ चाखे ॥मड्युं छे॥

केम पड्यो जीव माँदो, झाड़ उपर शोक मां (२)
एने तो उड़ी ने जावूं हतूं इन्द्र लोक मां
पगलां सकड़ाई लीधा, आशूं कीधूं पापे ॥मड्युं छे॥

जीव ब्रह्म बन्ने राखे, धर्म नी प्रतिष्ठा (२)
एक जन्म भोगे बीजो आ-जगत नो स्रष्टा
एक डाड़े बन्ने मित्रो बेठा साथे साथे॥ ॥मड्युं छे॥(२)

आ जगत ना हॉटेल मां प्रभु सेवा बहू कीधी (२)
जीव पांख फेलावी ले, दिशा आनन्द नी सीधी
उड़ी जाजे ऐ पेल्ला जो जगत तने फाँसे ॥मड्युं छे॥

2. चिकने कटोरे

पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावापो वसानो अधि सानो अव्ये।
अव द्रोणानि घृतवान्ति सीद मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः॥ *साम. ५३२*

630 तर्जः *पदयात्र यो जिन्नम परयू सखी-1547*

ऐ मेरे मन मोहन, मधुरस तू पी
यज्ञ भावनायें जागीं, लहरें उठीं।
मिश्री शहद हुए फीके जब मन में श्रद्धा जगी॥ ॥ऐ मेरे मन॥

देरे ना त ने ना देरे ऽ ऽ दे रे नात देरे दा ऽ ऽ ऽ ॥2॥
उच्च शिखर पर हृदय की, भावुक लहरियाँ जा पहुँचीं
पराकाष्ठा चेतना की, हृदयाकाश में जा फैलीं
कितनी नशीली हैं लहरें इन्द्र तू इसमें जा बह ले
इस देह की अयोध्या में, इन्द्रिय कलश में, सोम रस तू पी॥
मधुर रस तू पी, यज्ञ भावनायें जागीं लहरें उठीं। ॥ऐ मेरे मन॥

इन्द्रिय-कलश ये तो बरबस, दिखते हैं सूखे काठ से
किन्तु श्रद्धा का रस परिपूर्ण, भर दिया जब भी पात्र में
पात्र घृत रस से बना चिकना लाजिम है इस रस का टिकना
सोम रस होता है घृत सम, ये स्निग्धता ही है निरति,
मधुर रस तू पी, यज्ञ भावनायें जागीं, लहरें उठीं। ॥ऐ मेरे मन॥

ये मेरे नेत्र कर्ण जिह्वा, सोम की बाट जोह रहे
रोम रोमाञ्चित, स्नेहित प्राण, स्नेह भरी दृष्टि पोस रहे
सोमरस चमको बरसो, बीते कई अरसों बरसों
खड़े हम प्रतीक्षा में मोहन। कब से ये आँखें हैं तरसी ॥
मधुरस तू पी, यज्ञ भावनायें जागी, लहरें उठीं ॥ ॥ऐ मेरे मन॥

मधुमय नशीली ऋतवती लहरों से भर दो सबका मन
ओढ़ के आओ तुम ओढ़नी हर्षित तरङ्गों की मोहन!
काठ-कटोरों में आओ, प्यासी आत्मा को सरसाओ
प्रेम सनी प्याली आत्मा के होठों पे रख दो हर घड़ी॥
मधुरस तू पी, यज्ञ भावनायें जागी, लहरें उठीं ॥ ॥ऐ मेरे मन॥

---

*(**पराकाष्ठा**) अत्यन्त ऊँचाई, (**लाजिम**) आवश्यक , (**निरति**) अगाध प्रेम, (**बरबस**) अचानक, (**पोस**) पालन करने का अगाध प्रेम, (**ऋतवती**) नियम का पालन करने वाला।*

3. वह सब सुनता है देखता है

नकीमिन्द्रो निकर्तवे न शक्रः परिशक्तवे। विश्वं शृणोति पश्यति॥ *ऋ. ८.७५.५*

855 तर्जः *पदिये सन्ध्य राविल मारिल चायादे-राग देस-1398*

तुमने कभी कहा प्रभु से अपनी शरण दे?
और क्या कभी कहा के तू अपना अवन दे
स्वार्थ में जीने की जो राह बनाई है।
अपनी जीवन-सृष्टि आप सजाई है।
उसकी सत्ता से इनकार किया है।
उसके ही विरोध में प्रचार किया है॥...तुमने...
क्या तुम समझते हो के इन्द्र प्रभु का करें ना मान
लांछित करके इन्द्र प्रभु का करोगे नित अपमान
कह दो चाहे अद्भुत सृष्टि बन गई अपने आप
सागर की तरंगों में भी ना है किसका हाथ।
जगत बना प्रकृति से स्वयं, आप की नष्ट हुआ स्वयं
अतन्त्र जिस दिन जीवन में आयेगा अत्यय,
याद आयेगा ईश्वर और उसका प्रभव
याद आयेगी उसकी दया, ओर उसका नित्य रक्षण
नास्तिक से आस्तिक बन जाएगा अभिमानी स्वयं
इन्द्र को तुम कर लोगे पराजित, है ये तुम्हारी भूल
तीर तुम्हारे तुम्हें ही चुभेंगे फाँकोगे तुम धूल
इसलिये नास्तिको जल्दी चेतो तुम,
ईश की सत्ता मानो बनो ना मासूम
ईश्वर का हृदय है बहुत ही नरम,
केवल तुम सम्भालो अपने क्रतु करम...तुमने...
चमत्कारी प्रभु की शक्ति देखो ओ इन्सान!
सब कुछ देखता सुनता है सब का प्रिय भगवान,
तुम चाहे छिप जाओ कहीं भी ईश्वर है दृष्टा
गुप्त स्थान पर कुछ भी बोलो लेकिन प्रभु सुनता
चाहे वाणी से बोलो मन में कुछ सोचो,
आश्रुतकर्ण है ईश्वर, न्यायकारी वो तो
उसकी दृष्टि शक्ति विश्व में सतत प्रबल
आओ उसके चरणों को बनायें आश्रय स्थल
सर्वश्रोता सर्वदृष्टा के ही प्रभु चरणों में
श्रद्धानवत प्रणाम करें विनीत हृदयों से
उसे अपमानित करने की ना करें कभी भी भूल
क्षमा याचना जो करता, कहते उसे ना कभी मूढ़
भाव विभोर हो अंक में लेता और कल्याण की वर्षा करता
क्यों ना प्रभु की गोद में बैठें, धन्य हों प्रभु से आनन्द लेके॥ तुमने...

4. हमारी पुकार

आ घा॑ गम॒द्यदि॒ श्रव॑त्सह॒स्रिणी॑भिरू॒तिभिः॑। वाजे॑भि॒रुप॑ नो॒ हव॑म्॥

—ऋ. १.३०.८ —अथ. २०.२६.२ —साम. ७४५

309 तर्ज़ः *पण्ढ़री नाथा थड़करी आशा-1424*

जगत विधाता, प्रभु सुखदाता (२)
जब सुन लेता तड़प हृदय की,
पास अधिक हो जाता (झट से) (२) ॥जगत॥

उस तक अपनी करना सुनाई, ये प्रयत्न तो बड़ा कठिन है, (2)
चाहिये बल सामर्थ्य योग्यता और न आत्मा जिसकी मलिन है,
सच्चे भक्तों की वो सुनता, मन जिनका सन्देह रहित है,
व्यर्थ न जाये हृदयी प्रार्थना, शुद्धात्मा ही प्रभु को पाता॥ ॥जगत॥

अज्ञानान्धकार की ठोकर, पग पग पर अज्ञानी खाते (2)
ज्ञान प्रकाश के महापुञ्ज से (२) ये त्रिलोक, प्रभु ही चमकाते
बिना कान सब ओर से सुनते यदि कल्याणमय प्रार्थना पाते,
प्रभु पुकार जब सुनता है तब सर्वात्मभाव से हृद् भर जाता॥ ॥जगत॥

रक्षा शक्तियाँ अगणित उसकी अनन्त सेना रक्षा करती (2)
हमें तो बस चाहिये जरा सी (२) 'वाज' की शक्ति उस प्रभुवर की
पवित्र हृदय से जो भी पुकारे हृदय-वाज शक्ति घर करती
हम पीड़ितों की रक्षा करता अबलों का वो ही बलदाता॥ ॥जगत॥

आत्मा में हो स्वार्थ शून्यता, भाव समर्पित, हृद-पावनता (2)
दिव्य विभूति भरी फौज से (२) हम मर्त्यों का बनता बलदा
नेत्रहीन बनकर जब जीते, मार्ग दिखाता प्रभु, प्रकाश का
ज्ञान-मेघ निर्झर तब बरसे, निर्भय हो जीते बिन बाधा॥ ॥जगत॥

---

*(**मलिन**) मैला, दूषित, (**वाज**) ज्ञान व बल, (**पवित**) निर्मल शुद्ध, (**अबल**) बलहीन, कमजोर (**पुञ्ज**) समूह, ढेर। (**अगणित**) जो गिनी न जा सके, (**विभूति**) ऐश्वर्य, (**मर्त्य**) मरण धर्मा, (**हृद**) हृदय।*

5. उस दर्शनीय को मैंने देख लिया है

दर्श नु वि॒श्वद॑र्शतं॒ दर्श॒ रथ॒मधि क्षमिं। ए॒ता जु॑षत मे॒ गिर॑ः॥

ऋ. १.२५.१८

918-तर्जः *परयादे मइयन पुइरे, निरयुम-1500*

प्रभु तेरे दर्शन हो गए, आनन्द के बादल बरसे
उल्हास भी ऐसा जागा जिसके लिए थे तरसे
प्रभु तुम हो 'विश्वदर्शन' सब दुरित तुम्हीं तो हरते॥
॥प्रभु तेरे दर्शन॥

आज तो मैंने देख लिया मानो अद्भुत रथ है मिला
जिसपे बैठ के मैं संसार के, दुर्गम मार्ग को छोड़ चला
अब कोई कष्ट ना कष्ट रहा
मेरी भक्ति भरी वाणी सुन ली
जिसने प्रभु तुझे रिझा दिया ॥प्रभु तेरे दर्शन॥

प्यारे वरुण तो देखने लायक, दुःख हरते सबके सुखदायक
उनको देते हैं दर्शन जिसका मन-हृदय है पावक
प्रभु दर्शन के ऐ साधक!
क्या हृदयोद्गार उल्हास का
जज़्बा तेरा हृदय दिखा सका?

---

*(**दुरित**) पाप, (**दुर्गम**) कठिन, (**पावक**) पवित्र, (**उल्हास**) आनन्द, हर्ष, प्रकाश।*

6. दो प्रकार की उत्तम स्तुतियाँ

स घा नो देवः सविता साविषदमृतानि भूरि।
उभे सुष्टुती सुगातवे ॥३॥ *अथर्व. ६.१.३*

883 तर्ज: ***परयान मरन्न परिभवंगल विरहार्द्रमा–1425*** **राग-जोग**

करना प्रसन्न परमेश्वर! (२)
मन तेरी शरण को तरसाये
स्मरण करेंगे हर दम तुझको (२)
तेरी कृपा हमें राह दिखाये॥ ॥करना प्रसन्न॥

सच्चिदानन्द तेरी महिमा ऽ ऽ ऽ (२)
करती प्रेरित हमें
है तेरी पावनी, ज्ञान की गंगा (2)
करे आत्मा को ज्ञानापन्न
वाह रे! मेरे भगवान!
ग ऽ ऽ सा ग नी सा प ऽ प नी सा म ध सा
नी सा ग म प ग म प नी सां
सा ऽ ऽ नी पमग, नी प म ग ऽ ऽ
करे अनेक जगत कृपा
तारो हमें भी हे प्रभो! करना प्रसन्न...

पाते तुमसे हम सौभाग्य
सोम की धारों से
प्रभु की ही गा स्तुति
दोनों प्रकारों से(2) (गद्यपद्य)
गद्य हो या गीत भजन
हृदय हो साधन
योग-सुधा का पी कर अमृत
पा परमानन्द को ॥ करना प्रसन्न...

7. भौतिक तथा दिव्य दृष्टि बरसाने वाला

नो॑ वृ॒ष्टिं दि॒वस्परि॒ स नो॒ वाज॑मन॒र्वाण॑म् स नः॑ सह॒स्रिणी॒रिषः॑॥

ऋ. २.६.५

254 तर्जः *परिकथे तिल राजकुमारा-356*

दिव्य वृष्टि बरसाने वाले, तृसित धरा को तू सरसा(2)
झुलसी जा रही ताप से भूमि, कृष्ण मेघ जल को बरसा॥
॥दिव्य॥

ग्रीष्म ताप से तरसी धरती(2) ताल तलैया सूख रहे हैं, (2)
मेघों बीच बिजुरिया कौंधी (2) वर्षा जल लाये आतुरता॥
॥झुलसी॥

प्रसन्नता की लहर आ रही, कृषकों में उमंग छा रही,(2)
अन्न वनस्पति औषधियों में (2) आये नजर प्रभु कृतार्थता॥
॥झुलसी॥

वही प्रभु आत्मा के भीतर, (2) आनन्द वर्षा करते रहते(2)
ज्ञानेन्द्रिय मन आत्म-प्राणों को (2) वृष्टि से पुलकित करता॥
॥झुलसी॥

आतंकवाद भी ताण्डव करता (2) गोलियाँ खाते हैं निर्दोष।
किसने अहिंसा से पैदा की शक्ति विलक्षण, निर्भयता ॥
॥झुलसी॥

एक बीज से पौधा निकले (2) कितने दाने उसमें उपजे (2)
कौन है? शाक फलों की उपज में, अत अपनी लीलाएं करता॥
॥झुलसी॥

आओ अग्नि स्वरूप प्रभु की (2) नतमस्तक हो महिमा गायें (2)
उसके उज्ज्वल कृत्यों को कर (2) पायें जीवन में प्रवरता॥
॥झुलसी॥

---

*(**धरा**) धरती, (**कृष्ण मेघ**) काले बादल, (**आतुरता**) व्यग्रता। (**कृषक**) किसान। (**कृतार्थता**) सफलता, दक्षता। (**पुलकित**) रोमाञ्चित, हर्ष युक्त। (**विलक्षण**) अद्‌भुत (**कृत्य**) किये जाने वाले कर्तव्यकर्म (**प्रवरता**) श्रेष्ठता।*

8. देवाधिदेव महादेव परमात्मा

यच्चि॒द्धि शश्व॑ता॒ तना॑ दे॒वंदे॑वं॒ यजामहे। त्वे इद्धू॑यते ह॒विः ॥

ऋ. १.२६.७ साम. १६१८

347 तर्जः *पलिविडुम वलरगनम तुनपादै वरुवरम-1427*

सृष्टि के नियम
हैं सनातन, हर नियम
परिवेदन, परिवेदन
ऋत सत्य के नियम
सब देश कालों में सत्य रहें
इनको सनातन नियम कहें
परिचरण परिचरण
देव करते हैं यजन (2)
तुझको पल छिन निशदिन
हर घड़ी देवें हवि
यशस् याज्ञिक पूजित
तन मन धन
परिवेदन, परिवेदन
ऋत सत्य के नियम
परिचरण परिचरण
देव करते हैं यजन॥

शश्वत दृष्टि से कर्म करें
अङ्गभूत बनकर यजन करें
परिचरण परिचरण
देव करें यजन (2)
तुझको पल छिन निशदिन
हर घड़ी देवें हवि
यशस् याज्ञिक पूजित
तन मन धन
परिवेदन परिवेदन
ऋत सत्य के नियम
परिचरण परिचरण
देव करते हैं यजन॥

---

*(**परिचरण**) सहायक (**परिवेदन**) पूर्ण ज्ञान। (**हवि**) = भेंट के लायक पदार्थ या भाव। (**शश्वत**) बहुत अधिक, बारम्बार। (**यशस**) कीर्ति यश। (**यजन**) = यज्ञ करना।*

9. दिव्य पूर्णमासी

पूर्णा पश्चादुत पूर्णा पुरस्तादुन्मध्यतः पौर्णमासी जिगाय।
तस्या देवैः संवसन्तो महित्वा नाकस्य पृष्ठे समिषा मदेम ॥*अथ. ७.८०.१*

372-तर्जः *पहाटे झाली उठा उठा–राग ललित –1319*

उदित हुई है पूर्णमासी (2)
गगनांगन में चन्द्रदेव हँसे
फैली चारों ओर ही हाँसी ॥उदित हुई॥

शीतल चाँदनी छटकी चहूँ दिशी (2)
सौम्य प्रकाश की मिली अनुदृष्टि (2)
शांत आह्लादक अमृत बरसे।
चन्द्र किरणों के बने अवासी॥ ॥उदित हुई॥

पूर्णिमा जागी आध्यात्म-लोक में (2)
चारु-चन्द्र जगा, मन की ओक में (2)
सौम्य चन्द्रिका फैली अन्तर में (2)
मन की वृत्तियाँ बनीं प्रतापी॥ ॥उदित हुई ॥

शीतल मञ्जुल किरणों से ही (2)
हृदय सुक्षेत्र भरपूर हो गया (2)
सत्य पथिक हो जगीं इन्द्रियाँ
श्रद्धा बन गई मन की साथी॥ ॥उदित हुई॥

आत्मा भी सुख ज्ञान में जुटा (2)
मन शुभ संकल्पों में लगा (2)
श्रवण मनन निदिध्यासन द्वारा
इच्छा दर्शन की भी जागी ॥उदित हुई॥

अङ्ग-अङ्ग में पूर्णता जागी (2)
त्रुटियाँ छिद्र न्यूनता भागीं (2)
पूर्णाध्यात्मिक आत्मनुरागी
दिव्यानन्द का बना प्रवासी॥ ॥उदित हुई॥

---

*(**अनुदृष्टि**) दयादृष्टि (**गगनांगन**) आकाश का प्रांगण, (**आह्लादक**) प्रसन्न करने वाला।*
*(**चारु**) सुन्दर मनहर, (**न्यूनता**) कमियाँ, (**सौम्य**) शांत, गम्भीर, (**प्रवास**) रहने का स्थान।*

10 ध्यानी बुद्धि से कर्म को पवित्र करते हैं

जा॒तो जा॑यते सु॒दिन॒त्वे अहा॒ सम॒र्य आ वि॒दथे॒ वर्ध॑मानः।
पु॒रान्ति धीरा॑ अ॒पसो॑ मनी॒षा दे॑व॒या विप्र॒ अदि॑यर्ति॒ वाच॑म्॥ *ऋ. ३/८/५*

200 तर्ज : *(1) पहाटेस तांबड़े फुटावे–1076*

जीवन ही संग्राम कहाये
हर दिवस को सुदिन बनाये ॥हर दिवस॥

श्रम के बिना दैवी शक्तियाँ, मित्र किसी की न बनती(2)
जीव परिश्रम से आराम पाये॥ ॥हर दिवस॥

चेष्टा में, यत्न में, जीव निखरता और निश्चेष्ट बने अपाहिज
स्वस्थ है वो हाथ पैर हिलाये॥ ॥हर दिवस॥

बढ़ने का अर्थ है जीवन से लड़ना, पुरुषार्थ, प्राप्ति का साधन(2)
सच्चा पुरुषार्थी सफल हो जाये॥ ॥हर दिवस॥

लड़ना नहीं है लड़ने की खातिर, साध्य नहीं है ये हैं साधन (2)
परिश्रम ही लक्ष्य प्राप्ति कराये॥ ॥हर दिवस॥

बुद्धिमान मनन शक्ति से, कर्मों को श्रेष्ठ पवित्र बनाते (2)
ज्ञान ही मानव का शोधन कराये॥ ॥हर दिवस॥

ऋतयुक्त साधना ऋतयुक्त बुद्धि, जीवन में करते रहो तुम धारण (2) ऋतमय कर्म प्रबुद्ध बनाये॥ ॥हर दिवस॥

ज्ञानमय कर्म ही विप्र बनाते, सार युक्तवचन जो बोले (2)
देव विषयक वाणी सबके मन भाये॥ ॥हर दिवस॥

देवजुष्ट वाणी है जिसकी धरोहर, अनृत को त्यागे जीवनभर (2)
देव ही ऋत का अनुष्ठान कराये॥ ॥हर दिवस॥

दानव तो अक्सर पलते अनृत में, और देव रहते सत्य स्वरूप में (2)
देव देवत्व का परिचय कराये॥ ॥हर दिवस॥

---

*(**निष्चेष्ट**) चेष्टाहीन, (**देवजुष्ट**) देवताओं द्वारा सेवित, (**अनृत**) असत्य, झूठ। (**अनुष्ठान**) नियमपूर्वक काम को करना।*

11. मित्र के मार्ग से गति प्राप्त

यन्नूनमश्यां गतिं मित्रस्य ययां पथा।
अस्य प्रियस्य शर्मण्यहिंसानस्य सश्चिरे॥ *ऋ. ५.६४.३*

348 तर्ज : *पाऊसपहिला क्षधुका लूला वर्षुन गेला–1267*

मित्र है प्यारा प्रभु हमारा सत्यादेशादर्श का है नेता (2)
देता हम भटकों को सहारा, सत्य मार्ग का वो ही प्रणेता॥
॥मित्र है प्यारा॥
उन्नति मार्ग सुझाई न दे तो, सङ्गति-भाव ले, मित्रता बनती
प्रेम भरा सन्देश सुन प्रभु, करता विनम्र भाव हृदय का॥
॥मित्र है प्यारा॥
मित्र के मार्ग पे कदम बढ़ाऊँ निःसंदेह सही गति पाऊँ।
ऐसा मित्र जो है निस्वार्थी, उससे ही रखें, मन की अपेक्षा॥
॥मित्र है प्यारा॥
सर्वस्नेही सुविशाल वो रक्षक, विध्न निवारक सबका अर्हत
सब संलग्न है शरण में उसकी, करो परम कल्याण प्रचेता॥
॥मित्र है प्यारा॥
शिशु-अबोध सी मेरी दशा, चलने की अदम्य मेरी लालसा
लड़खड़ाना डगमगा के गिरना, फिर इक दिन चल मैं लेता॥
॥मित्र है प्यारा॥
हरियाली तो पशु को ललचाये, छोड़ रास्ता घास वो खाए
बस ऐसी ही भ्रष्ट चाल ले, उल्टे पैर लोभी मुड़ लेता ॥
॥मित्र है प्यारा॥
जो भी शरण दायक पथ चलते, संत ऋषि ज्ञानी जन बनते
उनकी इस निर्दिष्ट राह को, व्रती ही ध्यान में सतत लेता॥
॥मित्र है प्यारा॥
मित्र प्रभु प्रिय मधुर सलोना, सच्चा प्यार ना उसका खोना
हिंसा और विद्वेष से दूरी, अपने भक्त की वो प्रभु कर देता॥
॥मित्र है प्यारा॥
क्या कहना! इस विश्वामित्र का, सदा निभाये प्रेम-मित्रता,
सुन्दर सीधे सरल मार्ग से, चतुष्कर्म वो सिखला ही देता॥
॥मित्र है प्यारा॥

---

*(**सत्यादेशादर्श**) सत्य का आदेश व आदर्श, (**सङ्गति**) मेल, संसर्ग। (**प्रणेता**) नेता व्याख्याता। (**निर्दिष्ट**) निश्चित (**अपेक्षा**) आशा प्रत्याशा। (**सलोना**) सुन्दर। (**प्रचेता**) मनीषी, बुद्धिमान। (**अर्हत**) पूजनीय, प्रसिद्ध।*

12. हम निष्पाप हो के तेरे प्यारे बन जाएँ

कि॒त॒वासो॒ यद् रि॑रि॒पुर्न दी॒वि यद् वा॑ घा स॒त्यमु॒त यन्न वि॒द्म।
सर्वा॒ ता विष्य॑ शिथि॒रेव॑ दे॒वा...ऽधा॑ ते स्याम वरूण प्रि॒यास॑ः॥

ऋ. ५.८५.८

943 तर्जः पाटिल ई पाटिल इनियुम्ने पुनरिल्ले–324

प्रभु मैं काबिल बनूँ काबिल,
खुशियों से रहूँ खिलके

करुँ सत्य को धारण ऽ ऽ
ऐसी शक्ति दे दे
रहे ना तुझसे दूरी
ऐसी प्रीत भर दे
अनुराग तेरा करुँ हासिल,
घडूँ, जीवन तुझे मिल के॥
प्रभु मैं काबिल...॥

आ ऽ ऽ ऽ आ ऽ ऽ ऽ
पाप की ना लगे धुन
ना काठ सा हो जीवन
शुद्ध हो जाएँ आचरण
शुद्ध तन मन व धन
अनमन हो ना मन,
ना वृजिन
विषय वासना में होवें,
ना आसीन
संतुलित मन हो, अशिथिल
साफ दिल॥
प्रभु मैं काबिल...

आचरण ऐसा होवे शुद्ध
जैसे शुद्ध चाँदनी,
पाप या पापाभासों की
ना होवे खलबली
ले बल प्रभु से
प्रार्थी बन
आँचल उसका
थाम आत्मन्!
बन जा प्रभु का प्यारा
आदोखिल
साफ दिल प्रभु मैं काबिल...॥

---

*(**आसीन**) लगा हुआ, (**अदोखिल**) निष्कलंक। (**पापाभास**) पाप ना करने पर भी दोष लगना और बदनाम हो जाना–पापाभास है। (**काबिल**) योग्य विद्वान। (**खलबली**) घबराहट, (**धुन**) काठ में लगने वाला कीड़ा। (**अनमन**) खिन्न, उदास। (**वृजिन**) टेढ़ा, (**अशिथिल**) दृढ़, मजबूत।*

13. वह इन्द्र

इन्द्र इन्नो महानां दाता वाजानां नृतुः। महाँ अभिइवा यमत्॥

ऋ. ८.९२.३

745 तर्जः *पाड़ानुमपरयानुम इनिक्यरियात अनुरागमे-2701*

हज़ारों कई लाखों के नेता हैं वो इन्द्रदेव!
फैला है महाबल-तेज, वो हैं सब जीवों के श्रद्धेय-देव

हज़ारों...

इस जग की लहरें आन्दोलन, उठते दबते रहते नित(2)
तुच्छ पुरुष कभी बनते बड़े, महा तेजस्वी कभी होते पतित
खेल खिलाड़ी है ईश्वर॥

हज़ारों...

देखो स्थावर जंगम सब ही, उसके इशारे पर आश्रित (2)
कठपुतली सम नाच रहे हैं अटल सत्य नियमों में नित
प्रभु हैं नित सबके भीतर॥

हज़ारों...

प्रभु हैं अभिज्ञ अन्तर्यामी, सबके मनोरथ वो जानें(2)
और आत्मा की आत्मा होकर, विधिवत ही सबको पहचानें
जीयो उसका अमृत पीकर॥

हज़ारों...

आओ हम निज तेज व बल से, निरभिमानी होवें विनीत(2)
आश्रय दाता, परमेश्वर से, पायें आश्रय और आशीश
उससे ही पायें ईसर॥

हज़ारों...

---

*(**अभिज्ञ**) निपुण, कुशल, बुद्धिमान। (**ईसर**) महत्व, ऐश्वर्य।*

14. सद्पुरुषों के सह्योग से प्रभु को जानें

अथा॑ ते॒ अन्त॑मनां विद्याम॑ सुमती॒नाम। मानो॒ ऊति॑ ख्य॒ आ ग॑हि

ऋ. १.४.३

820 तर्जः *पाडु निलावे तेन कविदै पूमलरे*

हे परमेश्वर!
लालसा जगा
दे दे दर्शन ॥
चाहें सत्पुरुषों का ही संग
जिससे हो जाएँ हम मतिमन्द ॥हे परमेश्वर!

(1) ज्ञानवान् गुणवान जो हों विवेकी
संग करें उनका हैं जो ज्ञान-केशी
सद्असद् को समझें जानें शुभ अशुभ
भली-भांति समझ के होवें प्रबुद्ध
कर्तव्याकर्तव्य, धर्म अधर्म का
कर लें विवेचन, वैसा ही आचरण
ऐसे सौभाग्य का होवे ना अन्त॥ ॥हे परमेश्वर!

(2) वित्त-पुत्रलोकेष्णा से वो दूर
और त्रिक संयम से होवें वो पूर
हो जप तप श्रद्धा भक्ति में लीन
और प्रभु के चरणों में वो हों आसीन
जीवन में पूर्ण रूप संभले हुए हों
परम पिता के वो रंग में रंगे हों
ओजस्वी प्रभु के हों ओजरूप सन्त॥ ॥हे परमेश्वर!

(3) सच्चे साधकों के बीच रहें हम
शनैः शनैः तुझको जान जाएँ भगवन्
हो जाएँ तेजोमय तेरे तेज से
ज्योतिर्मय हो जायें तेरी ज्योत से
ओजोमय हो जाएँ तेरे ओज से
हो जाएँ दूर हम पापी रोग से
जिससे हे आनन्दमय! पायें आनन्द॥ ॥हे परमेश्वर!

---

*(**मतिमन्द**) बुद्धिमान, (**केशी**) किरणवाला, (**प्रबुद्ध**) ज्ञानी (**विवेचन**) जाँच पड़ताल परीक्षा, (**त्रिक संयम**) धारणा, ध्यान, समाधि।*

15. परिछिन्न आत्मा

अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं वि ष्यामि मायया।
ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे *अथ.१९.६८.१*

303 तर्जः ***पाण्या तले पहाला प्रतिबिम्ब आसनारे-479***

परिछिन्न आत्मा है ईश्वर है सर्वव्यापक (2)
दोनों को वेद जाने, है रहस्य ज्ञान मूलक ॥परिछिन्न॥

सत्तायें हैं विवादित, भिन्न भिन्न हैं धारणायें (2)
कोई बताये साकार, कोई नभ में है बतायें
इनका निराकरण तो, बुद्धि से होवे जागृत ॥परिछिन्न॥

मन, बुद्धि और हृदय से, दोनों का बोध होवे
मस्तिष्क को लगाकर तर्कों से शोध होवे
हैं सूक्ष्म भावनायें जिनका हृदय-प्रकाशक ॥परिछिन्न॥

ये आत्मा अपर है, गुण बोध से ही दीखे,
है सूर्य सम तेजस्वी, जो ज्ञान ही से सीखे
संकल्पों का धनी ये अहंकारवान नायक ॥परिछिन्न॥

इच्छा विद्वेष सुख दुःख पुरुषार्थ और सत्-ज्ञान
अनुभूतियों से आत्मा करती स्वयं ही अनुमान
इसे जान आत्मा करे कर्मानुष्ठान विधिवत ॥परिछिन्न॥

अति सूक्ष्म है ये आत्मा, फिर भी सामर्थ्य प्रचण्ड
उससे भी सूक्ष्म ईश्वर, जीवों का है सुखंद
उसकी अटूट प्रीति का ऐ जीव कर तू स्वागत ॥परिछिन्न॥

बिन कर्म रह सके ना, परिछिन्न ये जीवात्मा
सत्य ज्ञान-कर्म के बिन, ना बन सके धर्मात्मा
सत्य ज्ञान ले, सुगति कर, बन-जा प्रभु-उपासक॥ ॥परिछिन्न॥

---

*(**परिछिन्न**) अल्पज्ञ, मर्यादित (**अपर**) अन्य, दूसरा, भिन्न। (**सुगति**) उत्तम गति, मोक्ष। (**सुखंद**) आनन्ददायक। (**निराकरण**) निर्णय।*

16. शुभ एवं बलवान संकल्प

आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा न अस्तु।
यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनासि प्रविष्टाम्॥

अथर्व. १९.४.२

500 तर्जः *पाण्या तले पहाता–479*

जाना नहीं जीवन का अभिप्राय मेरा क्या है।
वशीभूत हूँ राग-भय से आशय छुपा हुआ है॥ ॥जाना नहीं॥

जैसा असत्य भाषण वैसा बना है चिन्तन
कलुषित मनस-उद्योग में कृत्रिम बना जीवन क्रम,
अभिप्राय सत्य-सत्त्व का छूटा ही जा रहा है॥ ॥जाना नहीं॥

जब छूटी ये अवस्था इस आत्म वञ्चना की
दुर्भगा की वृत्ति त्यागी वृत्ति जगी सुभगा की
अब लज्जा भय भी छूटा, सत्य ज्ञान समा रहा है॥ ॥जाना नहीं॥

फिर आज से बना दूँ सच्चा सुभग ये जीवन
सत्य ज्ञान होवे उद्बुद्ध मानस का हो उद्दीपन
आकूति चित्त की माता, उसे मन पुकार रहा है॥ ॥जाना नहीं॥

ऐ वाणी वैखरी कर तू पुकार आकूति की
मनोराज्य का दुराशय कर दूर ऋजु विधि से
आशय बना संङ्कल्पित जीवन जगा रहा है॥ ॥जाना नहीं॥

अब कोई भी शुभेच्छा, चलूँ सही दिशा में लेकर
शुद्धरूप होवे जिसका हो प्रकाश का अन्वेषण
तब गौण इच्छाओं का आधान कहाँ रहा है?॥ ॥जाना नहीं॥

---

*(**अभिप्राय**) आशय, लक्ष्य, उद्देश्य। (**आशय**) अभिप्राय, उद्देश्य, इच्छा। (**कलुषित**) मलिन गन्दा। (**उद्योग**) व्यवसाय। (**सत्त्व**) ज्ञान। (**वञ्चना**) ठगी धुर्तता। (**सुभगा**) उत्तम ऐश्वर्य-विषयक। (**आधान**) पकड़, ग्रहण। (**सुभग**) सौभाग्यशाली। (**उद्बुद्ध**) पूर्ण विकसित (**उद्दीपन**) प्रकाश करना। (**आकूति**) उद्देश्य, अभिप्राय, इच्छा। (**वैखरी**) अंतःकरण से निकली। (**दुराशय**) बुरे अभिप्राय। (**ऋजु**) सरल, सुगम। (**अन्वेषण**) खोज।*

17. हम सर्वत्र मातृभूमि के यश की रक्षा करें

ये ग्रामा॒ यदर॑ण्यं॒ याः स॒भा अधि॒ भूम्या॑म्।
ये सं॑ग्रा॒माः स॒मिति॑य॒स्तेषु॒ चारु॑ वदेम ते॥ *अथर्व. १२.१.५६*

322 तर्जः पाण्या तले पहटे प्रतिबिम्ब आसनारे–1453

तेरे लिये ये उत्तम वाणी सदा उच्चारें
हे भूमिमाते! तेरे हित के लिये विचारें॥

॥तेरे लिये॥

हर स्थान समय विषय में (2) चारु हों भाव-भाषित
तेरे यश को जो बढ़ाये, हितकर सदा प्रकाशित
तेरी आन के लिये है उन्नत कदम हमारे॥

॥तेरे लिये॥

तेरी सभा में तेरा ही पक्ष लें सदा ही
वक्तृत्व होते उपचित, प्रस्ताव हों प्रभावी
और हर समितियों में, उद्‌भूत हो, विचारें॥

॥तेरे लिये॥

सब मिल के हम परस्पर तेरे प्रेम-गीत गायें
उज्जवल भविष्य हेतु, तेरी चर्चा करें कथायें
सेवा में हो समर्पित हर ग्राम नगर चबारे॥

॥तेरे लिये॥

यदि युद्ध-क्षेत्र में हो, संकल्प हो विजय का
उत्साह सैन्य में हो जयघोष हो अभय का
आकाश में गुंजायें सिंह-गर्जना के नारे॥

॥तेरे लिये॥

---

*(**चारु**) सुन्दर (**भाषित**) कथित, कहा हुआ। (**वक्तृत्व**) कथन। (**उपचित**) समृद्ध, इकट्ठा किया हुआ। (**उद्‌भूत**) ऊँचा दिखाई देने वाला।*

18. चलता फिरता अपाहिज

तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे। देवत्रा हव्यमोहिरे

साम. १०६-१६८७

752 तर्जः *पादीराड ये दो हंसगीतम पाड़ी 25/35/255*

कर ले मन तैयारी हाँक स्वर्ग की गाड़ी
स्व में ही तेरा स्वर्ग, सुख का तू स्वचारी
आत्म-नेता है तू जो सदा है हितकारी कर ले मन...

कौन सा सुख ऐसा जो ना है तेरे आधीन
हर पल तेरे साथ रहे, हर मर्ज का हकीम
इन्द्र तू है, राजा स्वर्ग का (2)
रख सफर अपना इसी में जारी॥ कर ले मन...

इन्द्रियों के विषय हैं पर फिर भी हैं ये दूर
उसपे भी निश्चित नहीं है कब ये होंगे पूर
इन्द्र तू, जो वस्तु चाहे (2)
झट से अपने पास ले आता सारी॥ कर ले मन...

तू तो बस उसके गुणों का कर कीर्तन और ध्यान
कर आनन्द की खोज जिसमें आत्मा तृप्ति का धाम
आत्मसुख में, ही तेरा सुख (2)
जो निरत निष्काम रहे अविकारी॥ कर ले मन...

इन्द्रियाँ हैं विविध देव, आत्मा देवाधिदेव
रखता है आध्यात्मिक आस्था जाने सच्चा ध्येय
इन्द्रियों का, सुखाभास तो (2)
अन्त में बनता है बड़ा दुखकारी॥ कर ले मन...

मेरे मन! आत्मा की शीतल शरण में आजा
कृतज्ञता के भाव से गुणगान गीत तो गा जा
विनय का, अभ्यास होगा (2)
हव्य वाहन की रुचि अन्यारी॥ कर ले मन...

यदि संसार में कुछ भी ना हो, तू रहेगा अपाहिज
हव्यवाट हों जब तेरे तो तू रहेगा प्रवाहित
काम सबके आने की तो (2)
हविरूप स्तुति तेरी बड़ी प्यारी॥ कर ले मन...

---

*(**स्वचारी**) स्वयं आचरण व व्यवहार करने वाला, (**हकीम**) वैद्य (**निरत**) तत्पर, किसी काम में लगा हुआ। (**कृतज्ञता**) उपकार मानना (**अन्यारी**) निराली, अनोखी। (**हव्यता**) किसी के काम आना।*

19. कुशल सारथी की महिमा

रथं तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथिः।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चदनु यच्छन्ति रश्मयः॥

ऋ. ६.७५.६ यजु. २९/४३

467 तर्जः *पायल का वाजब-1016*

रथ में बैठा रथी अश्व को कर लेता है काबू (2)
मन के द्वारा सुपथ पे जाये (2) आत्मा-कामत-कारु
॥रथ में॥

स्तुति करे रथि बागडोर की जो अश्वों की गति सम्भाले (2)
अरुस् असंयत अश्व ना होते (2), वृत्तियाँ चातुर चारु ॥
॥रथ में॥

सूर्य रश्मि सम अन्तरात्मा, बाह्य जगत का वशी देव जो(2)
शुभ संकल्प ले बैठा रथ पे(2) सारथी कुशल मनायु (2)
॥रथ में॥

मन-वृत्ति सङ्कल्प की सहता, अनुभव से अन्वित कर लो (2)
अभीषु थामो हस्त-कौशल से(2) मनोदेव बन साधु (2)
॥रथ में॥

ज्ञान-कर्म-इन्द्रियों के अश्वों, बिन बाधा बहुदृश्वन् हो लो (2)
जित शत्रु हों मनोवृत्तियाँ(2) दृढ़ संकल्प हों दारु (2)
॥रथ में॥

---

*(**अश्व**) घोड़ा (इन्द्रिय रूपी घोड़े)। (**रथ**) गाड़ी (देह रूपी रथ)। (**रथी**) सारथी (आत्मा रूपी सारथि)। (**कामत-कारु**) अपनी इच्छा से निर्माण करने वाला। (**बागडोर**) घोड़े को वश में करने वाली रस्सी (यहां पर मन अर्थ है)। (**अरुस्**) घायल, चोट खाया हुआ। (**असंयत**) अनियंत्रित, संयम रहित, बन्धन हीन (ज्ञानेनिद्रयों पर)। (**चारु**) प्रतिष्ठित, सत्कृत, मनोहर, प्रिय। (**वशीदेव**) इन्द्रियों को वश में करने वाला, देवता तुल्य। (**मनायु**) मनन शील, (**सहता**) मिलाप, समन्वय। (**अन्वित**) प्रभावित (**अभीषु**) बागडोर, अभीष्ट की ओर ले जाने वाली। (**हस्त कौशल**) हाथों की दक्षता या चतुरता। (**मनोदेव**) मन रूपी देव। (**साधु**) उत्तम, श्रेष्ठ, योग्य, गुणी, पुण्यात्मा। (**बहुदृश्वन्**) अत्यन्त अनुभवी। (**जितशत्रु**) शत्रुओं या बुराईयों पर काबू पाने वाला या जीतने न वाला। (**दृढ़ संकल्प**) मजबूत इच्छा शक्ति या उद्देश्य। (**दारु**) उदार।*

20 सोम देव का हृदय मन्दिर में रमण

सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा। मर्य इव स्व ओक्ये ॥

ऋ. १.९१.१३

228 तर्जः *पायो जी मैंने राम रतन धन-1525*

प्रभु जी आओ हृदय में प्रेम बहा दो, (2)
जीवन सार तुम्हीं हो सद्गुरु
अर्न्तभाव जगा दो॥ (प्रभुजी आओ)
॥प्रभुजी आओ॥

स्वार्थ रहित हृदय निर्मल हो (2)
तब तुम आन विराजो ॥प्रभुजी आओ॥

झूठ असंयम हिंसा ना भाये (2)
राग-द्वेष हटा दो॥ (प्रभुजी आओ)
॥प्रभुजी आओ॥

बसा बसाया घर सुख देवे (2)
खुद को इसमें बसा लो (प्रभुजी आओ)
॥प्रभुजी आओ॥

भक्ति का रस जो मैंने जुटाया (2)
आकर प्रेम से चाखो॥ (प्रभुजी आओ)
॥प्रभुजी आओ॥

ये मद-हीन हृदय अब तेरा (2)
सोम-निवास बना लो॥ (प्रभुजी आओ)
॥प्रभुजी आओ॥

शुद्ध हृदय में रमण करो प्रभु
देवयाव हृदय पायो॥ (प्रभुजी आओ)
॥प्रभुजी आओ॥

हर जीवन प्राणों में बसना
मिलन महाय बना लो॥ (प्रभुजी आओ)
॥प्रभुजी आओ॥

---

*(**मद-हीन**) अभिमान रहित। (**सोम**) आत्मा की आत्मा, परमात्मा। (**रमण**) क्रीड़ा, किलोल, हंसी, दिल्लगी। (**देवयाव**) दिव्यता प्राप्त। (**हृद**) हृदय। (**महाय**) विशाल*

21. उपदेशकों का गुरु

शतधारमुत्समक्षीयमाणं विपश्चितं पितरं वाक्तानाम्।
मेळिं मदन्तं पित्रोरुपस्थे तं रोदसी पिपृतं सत्यवाचम्॥

ऋ. ३.२६.६

650 तर्जः ***पिक्क दिक्कन वोरु काटिन्ने, राग पीलू-608***

तू है गुरुओं का गुरु
प्रभु ध्यान तेरा करुँ
सत्य उपदेश तेरे
मन-आत्मा में भरुँ

ज्ञान वेदों का अक्षय
देता तू महिमामय
और बोध सृष्टि का
करता है तू शुरु ॥तू है गुरुओं का॥

पूर्ण ज्ञान देके भी, तू पूर्ण ही रहता
स्त्रोत शतधारी अक्षीयमाण वेद कहता
उच्चतम गुरुओं का उच्चतम अधिपति
कालातीत महागुरु सर्वोपरि
अद्‌भुत आनन्द, ज्योति निरन्तर
पाते रहे देवगरू ॥तू है गुरुओं का॥

प्रभु को तो पाना है, जगाओ आत्मशक्ति
ढूँढ लो हृदय में उसको और पाओ मुक्ति
आँखों से ना देखा जाए, वो तो है सर्वव्यापी।
कण कण में दिखाये जादूगरी
ध्यान निरन्तर है गुरुमन्तर
पाओ हृदय में प्रभु॥

---

*(**बोध**) ज्ञान, (**अक्षय**) जिसका विनाश न हो, (**अक्षीयमाण**) कभी क्षीण या निर्बल न होने वाला। (**शतधारी**) सैंकड़ों धाराओं वाला। (**कालातीत**) सब कालों से घिरे। (**सर्वोपरि**) सबसे उत्तम। (**गरू**) प्रतिष्ठित*

22. हम दिव्य भगवान का वरण करें।

सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये।
अपां नपातं सुभगं सुदीदितिं सुप्रतूर्तिमनेहसम् *ऋ. ३.६.१ साम. ६२*

817 तर्जः *पिच्च विच्च नाळ्मुदल कुनी-781*

इत उत मन तू ना विचर
सीख शुभ कर्मों को, सुधर
तू मरण धर्मा है समझ
हर कर्म कर तू सोचकर॥

इत उत...

बन जा सुधी, हो जा गुणी
गुणकर्म स्वभाव से धनी
बन जा साधकों का तू सङ्गी
आचरण में हो धैर्य संयम
मन तू कर प्रभु का वरण
पत्नोन्मुख ना हो रे मन
प्रतिदिन अपना निरीक्षण कर॥

इत उत...

देरे ना धीरे ना, नीधपम रेम रेम, नीध सां नी ध म प ऽ ऽ

ऐश्वर्यों से झोली भर
सबके प्यारे परमेश्वर
अपने कर्मों का तू दे दे वर
चारु चरणों की दे शरण
कर दे शुद्ध मेरे सब करम
जाये ना पापों में ये मन
भवसागर से तारण कर॥

इत उत...

23. कर्त्तव्य की कसौटी

देवस्य सवितुः सवे कर्म कृण्वन्तु मानुषाः।
शं नो भवन्त्वप औषधीः शिवाः ॥ *अथ. ६/२३/३*

772 तर्जः पुन्नाम्बल पुडयिरम दिनम् गळ अनाध्यम-631

ऐ मानव! कर कर्तव्य पालन
विदुर सविता को कर ले धारण
वो प्रेरणा दायक है सविता
देता कर्तव्य कर्म का मन
प्रेरणा उसकी यदि तू सुनना चाहता है हरदम
तो अन्तर्मुख कर ले ऐ मानव! अपना चञ्चल मन
प्रभु के प्रति समर्पित हो जा अनुग आत्मन्! ॥ऐ मानव॥

बिना सोचे ना अन्धाधुन्ध करम कर चञ्चल मन
जिसका परिणाम बुरा है वो ना कर देना तू अकारण
कर तो लेगा मगर किस खाई में जा के गिरेगा
चाहे ना चाहे तो भी फल उसका भुगतना पड़ेगा
हो सकता है किसी विद्वान से तू बोध तो ले ले।
आखिर तो वो भी है अल्पज्ञ ज्ञान उसका भी है कम॥ ॥ऐ मानव॥

इसलिये सविता प्रभु की प्रेरणा ले के चल
शान्ति सुख प्रीति बढ़ेगी फिर तू जाएगा संभल
भावना कलह विद्वेष की मन से जाएगी निकल
सच्चे चारित्र्य का निर्माण होगा दिन प्रतिदिन
तो फिर मानव साम्राज्य, प्रभु साम्राज्य होगा भिन्न
तो जीवन वसंत ही वसंत हो जाएगा अद्यतन॥ ॥ऐ मानव॥

इस तरह जल औषधियाँ होगी, सुखकारी शिव
नदियाँ देंगी शीतलता करेगी भूमि सहनशील
चन्दा सूरज व सितारे ज्योति देंगे नित दिव्य
व्यक्तिगत सामाजिक होंगे जीवन सबके समृद्ध
यही तो वेद की हैं प्रेरणायें और आदर्श
लेके कर्तव्य की शिक्षायें पाले शान्त जीवन,

*(**विदुर**) ज्ञानी, पण्डित (**अनुग**) पीछे चलने वाला। (**अल्पज्ञ**) थोड़े ज्ञान वाला। (**अद्यतन**) आज का।*

24. कुछ बून्दें हम पर भी बरसा दो

मध्वः सूदं पवस्व वस्व उत्सं वीरं च न आ पवस्वा भगं च।
स्वदस्वेन्द्राय पवमान इन्दो रयिं च न आ पवस्वा समुद्रात्॥ *ऋ. ९.९७.४४*

937 तर्जः *पुन्निनो मल्लादे येन्दिनो तून्दियो रिष्टम 1392/1637*

अमृत छलका दे प्यासा हूँ कब से भगवन्
(देखो) हो रहा नीरस तनमन
हे सर्वेश्वर! हे पवमान परमात्मन्
हे सुख कारक दुःख भञ्जन॥ अमृत...

हे करुणामय! प्रीतिदाय!
क्या मैं नहीं हूँ तेरा प्राणाय्य
कर दो आनन्दित आनन्दन्।
दुःखियों के करुणाकन्द
हे इन्दु!
कर दो मधु वर्षण
मधुमय भगवन्॥ अमृत...

चखूँ जहाँ से वहीं से हो मीठे
फिर क्यूँ प्रभु तुम रूठे?
अपने ही जैसा मीठा बना दो,
हे वसुमान! वसु के
प्राण हमारे कर दो नियंत्रित
बनें वसिष्ठ ऋषि सम
करो स्वीकार समर्पण अमृत...

हे प्रभु! वीर रसों के वसुधन
वीर रसों से भरो मन
फिर षड्रिपु तो होंगे पलायित
होंगे न उनके दर्शन
कर दो प्रदान सौभाग्य भी हमको
हृदय बना दो सरलतम
जागें भाव अहिंसन॥ अमृत...

हे सोमदेव आकर्ष जगाओ
रसना करे तेरा स्वादन
ऐसा चिर चस्का लग जाए
छूट ना जाए आकर्षण
तेरे ऐश्वर्य के सागर से
पा लें कुछ बूँदें हम
बन जाएँ, तेरे भाजन। अमृत...

---

*(**पवमान**) पूर्ण पवित्र (**प्रणाय्य**) प्रेम करने वाला, चाहने वाला (**वसु**) अग्नि। (**षड्रिपु**) छः शत्रु (**पलायित**) भागा हुआ। (**आकर्ष**) खिंचाव। (**भाजन**) पात्र, योग्य।*

25. प्रेरणा

यजस्व वीर प्र विहि मनायतो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये।
हविष्कृणुष्व सुभगो यथाससि ब्रह्मणस्पतेरव आ वृणीमहे॥

ऋ.२.२६.२

835 तर्जः *पुन्नुम नूली पूमूत्त पोले पुन्युश–राग मधुवंती*
854/1396

आत्मन् तू है रणबाँकुरा युद्ध का बिगुल बजा ले (2)
वीर जननी की कोख से जन्मा, विजय शक्ति को बढ़ा ले
मारो, मारो, निज शत्रुओं को मित्रों को बल से बचा ले (2)
आत्मन्...

अपने सामर्थ्य को तू पहचान, कर वीरता के ही काम
बाह्य अंतः शत्रु करें आक्रमण उनके मिटा दे निशान
वृत्र संहार के, पाप पापियों के पापों का कर तू संहार
किन्तु बनाये रख भद्र स्वयं को, उनका व्यक्तित्व न मार
वो तेरे मित्र भी बन सकते हैं पाप से उनको बचा ले
हे आत्मन् गुण क्षमा के उपजा ले, अपने यजन को संभाले
आत्मन्...

हे आत्मन् पूजा कर परमात्मा की संगति कर सज्जनों की
दान के योग्य तेरे पास है जो, दे धन धान्य या रोटी
राष्ट्र समाज में अपनी हवि दे, कर आत्मोत्सर्ग व सेवा
सौभाग्यवान बने तेरी आत्मा निरभिमान होके देना
ऐ भाईयो आओ ब्रह्मणस्पति से पा लेवें रक्षण सारे
अभिनन्दनीय कार्यों को करके आत्मसंतोष कमा लें

आरो, आरो, आरारीरा, आरीरम आरीरम आरो (2)
आत्मन्...

---

*(**बाँकुरा**) चतुर, (**वृत्र**) राक्षस (**यजन**) यज्ञ करना, (**आत्मोत्सर्ग**) आत्म त्याग।*

26. प्राणदाता

अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्व स्तूपं ददते पूतदक्षः। *ऋ. १.२४.७*
नीचीनाः स्थुरुपरि बुध्न एषा मस्मे अन्तर्निहिताः केतवः स्युः॥

905 तर्ज : *पुन्नुशस्सिमनुम नी राडुवान वरूमी राग : मधुवंती 685*

पूर्व हो या पश्चिम ऋजुराजन का है शासन
जग बाँध रखा नियमों में
कर सके ना कोई उल्लंघन
करना पड़े मान्य
उसका शासन॥

जगत के शासक भगवन् जो चमक रहे हैं सर्वत (2)
निज गुणों के कारण सब पे वरुण की है चमक
इन गुणों को जो हैं भाजन, लेते दिव्य ज्योति का आनन्द(2)॥॥पूर्व हो या॥

बरुण हैं राजन् रंजक करते हैं आनन्दित देकर दान। (2)
भाँति-भाँति की वस्तुएँ देते हैं वो ही दयावान
बल सारे हैं उनके पावन, कष्टहीन हैं बल, मन भावन (2)॥॥ पूर्व हो या॥

वो भगवान वरुण हैं उन्हें भक्त वरण करते हैं (2)
साक्षात्कार जो करते हैं वो मोक्ष के भागी बनते हैं
करते वो पाप निवारण करते हृदयों को पावन (2)॥ ॥पूर्व हो या॥

सूर्य टिका है नभ में आधार न कोई दिखता
आधार वरुण है केवल किरणों से ये पालन करता
चर अचर व जंगम स्थावर पाते हैं सूर्य से जीवन (2)॥॥पूर्व हो या॥

सेवन कारक सृष्टि उसे जाने तो बने सुखदायी (2)
तुम्हीं ने आनन्द के हेतु इसे भोग के लिए बनाई
सुख देगी हमको ये सदा यदि हम निर्दोष हैं भगवन् (2) ॥पूर्व हो या॥

जिस सूर्य को दिया प्रभु ने, उसकी किरणें हैं प्राणद (2)
है वरणयोग्य परमेश्वर ही सबके सुखद सहायक
हे आत्मा तुम श्रद्धा से करो परमेश्वर का सिमरन (2) ॥पूर्व हो या॥

(भाजन) *पात्र।* ***(रंजक)*** *आनन्दक।* ***(प्राणद)*** *प्राणों का दाता*

27. अजर अमर सन्तान

ऐना वो॑ अ॒ग्नि नम॑सो॒र्जो नपा॑त॒मा हु॑वे।
प्रि॒यं चेति॑ष्ठम॒रति॑ं स्वध्व॒रं विश्व॑स्य दू॒तम॒मृत॑म्॥ *ऋ. ७.१६.१*

905 तर्जः *पुन्नुशस्यम नुम नीराळुवान वरुमी राग मधुवंती-685*

हो रही है प्रतीति
मुझे आज विशेष बल की
रसमय अद्भुत शक्ति (2)
कल तक तो मैं अशक्त था,
मिली अपूर्व अब शक्ति, मीठी मीठी ॥हो रही॥
शक्ति ऐसी पाकर आनन्द आ रहा मुझको (2)
बल से यदि चाहूँ तो संसार हिला दूँ अब तो
ऐसा किया सचेत मुझे, इक बलधारा जो उमड़ी ॥हो रही॥
यह मीठी मीठी, प्रेरणा, क्या सचमुच देव तुम्हारी (2)
निर्बल था अब हुआ सबल साधना सफल हुई सारी
द्वार तेरा खटखटाया, सुनके भीख दे दी बल की (2) ॥हो रही॥
यह महायज्ञ की शक्ति, आदर्श व्रती ईश्वर की (2)
मिली जो शक्ति उससे वो शक्ति है अध्वर की
विश्व-संदेश की अग्नि मानों अङ्ग-अङ्ग मेरे छलकी (2) ॥हो रही॥
दूत बनी है अग्नि इस विश्व के दिव्य संदेश की (2)
मरणशील मानव के रोम रोम से बोल उठी
मेरे लिए अब मृत्यु कहाँ? थी बाट इसी अमर पल की(2) ॥हो रही॥
अमर वस्तु है अध्वर जिसके कारण बना जहान भी (2)
अमृत यज्ञ नहीं मरता है मरता नहीं यजमान भी
कितनी विशाल ये आग है जो, हर पल रहती जलती(2) ॥हो रही॥
प्रेरणा शक्ति इसमें उज्जवलता कितनी अतिरेक (2)
कितना प्रभावशाली इसका विश्व-याग संदेश
तुझे नमन तेरे बल को नमन ये ज्योति रहे मुझे फलती(2) ॥हो रही॥
अपनी शक्ति दी है मगर, डर मुझको अब हे शक्तिधर!(2)
लँगड़े की लाठी जो बने हो, बने रहो हे प्रीतिकर।
आँख से ओझल ना रहो चाहे घड़ियाँ रहें बदलतीं ॥हो रही॥
यज्ञ को चलित ही रखना चाहे जियूँ चाहे मर जाऊँ (2)
हे चेतिष्ठ सहायक, चेतनता तुझसे पाऊँ
तुम शक्तिरस की शान हो, तुझ पर मैं अवलम्बी ॥हो रही॥

*(**प्रतीति**) निश्चय (**अध्वर**) यज्ञ (**अतिरेक**) अधिकता (**चेतिष्ठ**) चेतना देने वाले।(**संतति**) सन्तान (**अवलम्बी**) आश्रित॥*

28. सूर्य किनके प्रति उदित होता है

उद्धेद्भि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम्। अस्तारमेषि सूर्य ॥

ऋ. ८.६३.१ साम. १२५, १४५०

754 तर्जः *पुन्नोड़ कुड़रिनी स्वरम-1389*

तुम आओ हृदय के प्राङ्गण, हे विभासन्
बना दो शुभ्र ये जीवन
करते हैं वेद श्रवण और तदनुसार मनन
करते हैं निदिध्यासन ओर दुरित निवारण
और वसुधा को कुटुम्ब अपना मानते हम
प्रकाशरूप भगवन! सूर्यों के महा सूर्य तुम॥ प्रकाशरूप...

'नर्यापस' 'श्रुतामघ'
और 'वृषभ' 'अस्ताप्रद'
परमेश्वर के ये भक्त
बनते जाते हैं सशक्त
जिनके वेद-शास्त्र ही
बनते हैं अमूल्य धन
जूझते हैं विध्नों से
आते रहें चाहे विषम
बरसाते (हैं) 'वृषभ'
विद्या धन धान्य
परहित केवल उनको है मान्य
उदित हो उनमें प्रीतम॥ प्रकाशरूप...

चाहें हम तो एक साथ
चारों अमूल्य धन वरें
अधकचरे ज्ञान वालों की
भटकन को हरें
अपने सूर्य सम प्रभु के
दिव्य आलोक में
कदम अपने रखते हुए
बैठें उसकी गोद में
परमेश्वर की केवल
ना लगे रट, चारों कर्मों में
सदा रहें रत
यही तो है परमात्म-स्मरण॥ प्रकाशरूप...

---

*(**श्रुतामघ**) वेद शास्त्र तथा उपदेश को धन मानने वाले (**नर्यापस**) नर हितकारी कर्म करने वाले। (**वृषभ**) बरसाने वाले, विद्या-भौतिक सम्पदा दूसरों पर बरसाने वाले। (**अस्ताप्रद**) विध्न बाधा को दूर फेंक देने वाले मनुष्य के।*

29. अन्न से अत्ता (अन्न से मन का रूप)

आ पवस्व सहस्रिणं रयिं सोम सुवीर्यम्। अस्मे श्रवांसि धारय॥ *साम. ५०१*

785 तर्जः *पुन्यु पिन्नान तेनी तेगनी लावाण–2698*

जीवन चमत्कार! आश्चर्य अपार!
कौन है जानकार? किसका सहकार?
शक्ति कहाँ से आई है देह को, कौन है इसका आधार?
देखना सुनना सूंघना चखना छूने का आभास
होता है आचार व्यवहार विचार कैसे वो अपने आप...होय। जीवन...
ईंट है पत्थर है सूखा है काठ है चेतनता उसमें कहाँ?
वाह रे देह! चेतनता तुझमें देखी है हमने यहाँ
अन्न तू खाता है फिर तू पचाता है होता विकार रहित
स्वस्थ शरीर में अन्न ग्रहण की शक्ति है उतनी अधिक
जो भी पदार्थ पहले से था तू चित्ति से शून्य था
चित्ति के पाते ही हो गया चेतन बन गया अब तू अत्ता
अत्ता जीवन का आधार॥ जीवन...
सात्विक अन्न तो धारण कराता, सुन्दर बलिष्ठ ही रूप
जीती जागती शक्ति तो मिलती धान हों चाहे दूध
ना किसी आम ना घी ना बादाम को कहते हैं पहलवान
किन्तु एक सजीव शरीर ही करता है शक्ति का काम
पाशविक बल से मानविक बल है आध्यात्मिक चमत्कार
मानव का चित्ति ही खुद के शरीर का बनता है मददगार
बनता है मददगार॥ जीवन...
सात्विक अन्न से सात्विक मन है राजस से राजस मन
तामसिक अन्न से तामसिक मन है ऐसा तो मन है दुर्मन
योगी-अन्न तो भौतिक नहीं है किन्तु आध्यात्मिक आहार
उसकी हर चेष्टा में ईश्वर की झाँकी है रागों की दिव्य बहार
दोनों लयें उसकी अन्न व मन की जो दिव्य शक्ति है सोम
दिव्य संजीवनी योग की शक्ति जिसमें है ओजस्वी ओ३म्
ओ३म् ही प्रेमाधार॥ जीवन...
ऐ मेरे आध्यात्मिक स्त्रोत जीवन, बहता जा बहता जा आज
नई नई शक्ति अङ्गों में लेके गाता जा स्वर सोम राग
अन्न को मेरे तू अत्ता बनाकर मन का ही रूप रंगा
मेरे भौतिक भोगों को तू वितत विभूतियों से चमका
भोक्ता में भोक्तृत्व गर हो नदारद ऐसा तो भोग बेकार
अन्न व मन के दिव्य संदेशों से ईश का कर साक्षातकार
ईश का साक्षातकार जीवन...

30. प्रेम में भरकर उसके गीत गाओ

प्र स॒म्राजे॑ बृ॒हदर्चा॑ गभी॒रं ब्रह्म॑ प्रि॒यं वरु॑णाय श्रु॒ताय।
वि यो ज॒घान॑ शमि॒तेव॒ चर्मो॑प॒स्तिरे॑ पृथि॒वीं सूर्या॑य॥ *ऋ. ५.८५.१*

889-तर्ज : *पुन्योल तुम्बी पोवाली तुम्बी-539*

आ जाओ तुम भी, आ जाएँ हम भी मिल के प्रभु के गुण गालें
एकत्र होकर प्रेम बढ़ाकर भाव समर्पण के हम पा लें
पत्ता पत्ता, अणु, अणु, उसकी महिमा को दर्शा रहा
उसकी महिमा का राग सारा विश्व मिल के गा रहा॥
॥आ जाओ॥

(1) थोड़ा सा भी सोचें एकाग्र होकर उसकी रचना-कौशल दीखे
विश्व तो एक ही मण्डली में मिलकर प्रभु महिमा गाता फिरे
फिर भी हमें गर सुनाई न दे, क्या फिर दोष नहीं है, इस मनका
॥आ जाओ॥

(2) प्रभु की महिमा का छोटा नमूना है, विस्तार वाली धरती
हर जीव को अन्न-बल देकर कितना उपकार करती।
किन्तु वरुण ने मृगासन जैसे धरती-धरातल बिछाया, गजब किया।
॥आ जाओ॥

(3) ईश्वर की भक्ति में डूबे रहे हम, गुणगान उसका हो विस्तृत
प्रेम के रस में भीगी सी भक्ति, वेद विहित होवे भूषित
अपने हृदय से भी निकली हुई भक्ति, जिसमें हो वेद गायन, हार्दिकसदा।
॥आ जाओ॥

(4) प्रभुभक्त योगी सूर्य के सम्मुख, करता है ईश-उपासना
योगी है शमिता, सच्चा उपासक दूर ही रखता है वासना
रखता है शाँत मन इन्द्रियों को, सफल है उसकी भक्ति और प्रार्थना
॥आ जाओ॥

(5) ऐ मेरे आत्मा! अपने वरुण की प्रेम भरी भक्ति कर ले
कर ले उपशम सारे संकट हृदय में शमिता को धर ले
विश्व ब्रह्माण्ड के प्यारे सम्राट की करते ही रहना उपासना और साधना
॥आ जाओ॥

---

*(**शमिता**) अपने मन इन्द्रियों को शाँत रखने वाला उपासक। (**उपशम**) शान्त*

31. सृष्टि के तत्व भगवान के आदेश से चलते हैं

अहं भूमिमददा भार्य्यायाऽहं वृष्टि दाशुषेमर्त्याय।
अहमपो अनयं वाणशनामम देवसो अनु केतमायन्॥ ऋ. ४.२६.२

952 तर्जः ***पुरिक्किल नी परन्यू पदके परन्यू 949***
(राग-मेघ मल्हार)

मनमानी करे क्यूँ
सन्ममार्ग पर चल तू
यज्ञकर कह दे इदन्नमम्
भाव निष्काम से जाग जा तू ॥मनमानी॥

बनना ना कञ्जूस
त्याग का मार्ग है सूच
जीवन की नैया ना जाए डूब, आ ऽ ऽ ऽ ऽ
अनुगामी प्रभु का हो तू
दया सागर हैं प्रभु
ज्ञान के सत्य पथ पे
कर कर्म तू
हर यज्ञ कर्म में
शामिल हो तू॥ ॥मनमानी॥

सूर्य चन्द्र अग्नि
ग्रह उपग्रह अवनी
सृष्टि नियम में हैं सब बंधे, आ ऽ ऽ ऽ ऽ
मनमानी ये भला क्या करें?
ईशाज्ञा पे ये चलें
वृष्टि करते हैं प्रभु
इसलिए स्वार्थी कभी
हो ना तू॥ ॥मनमानी॥

32. सन्यासी के समान पापहन्ता

१ २ ३ २ ३ ४ ५१२ ३२य ३ ५
इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो न जघान वृत्रं यातिर्न।
३१२ ३४५ ३२ २५२य १२२ १ २
विभेदं वलं भृगुर्न ससाहे शत्रून्मदे सोमस्य॥ *साम.६५४*

521-तर्जः *पुरिनाद रारी मुत्त पुरिनाद-0005*

बन जाओ ईश्वर-मित्र
ईश्वर तो है सुहृत
आओ ले लें मित्र से मैत्रिक प्यार
यतिरूप प्रभु हैं सत्य
वो हैं परिपक्व प्रज्ञ॥ ॥बन जाओ॥

भक्ति प्रेम सोमरस का
दें प्रभु को उपहार
'सुर' स्वभाव अति कर्म शील
ना है अकर्मण्यता॥ ॥बन जाओ॥

जैसा स्वयं है कर्मण्य
अन्यों का बने प्रेरक
भुजा कर्मण्य की थामें
प्रेरक पथिप्रज्ञ वो ही रहे॥ ॥बन जाओ॥

प्रेरणा जो अनसुनी करे
चोट-चपेटों से चेता देवे
अग्नि, ऋत की सहिष्णु है
अनृत से वो परे रहे॥ ॥बन जाओ॥

असुरों का यति वध करे
सुचरित्रों को आयद करे
यति महान हैं इन्द्र प्रभु
सर्वेष्णाओं से मन हो परे॥ ॥बन जाओ॥

मेघ सम प्रभु व्यापक वितत
पाप से ढके वृत्रासुर हरें
पुण्य-पवि रवि किरणों को
पापाचार से मुक्त करें॥ ॥बन जाओ॥

ज्ञानी परिपक्व जैसे गुरु
शिष्यों कर तम दूर करें
हृत्पटल से जीवात्मा के
अविद्या हरे ज्योति-ज्वल करे॥ ॥बनजाओ॥

प्रेम पूरित सोम रस
प्रभु को अर्पित यदि करें
प्रभु आनन्द विभोर हो
काम क्रोधादि रिपु हरें॥ ॥बन जाओ॥

---

*(**सुहृत**) मित्र, बन्धु। (**यति**) सन्यासी, त्यागी। (**परिपक्व**) अत्यंत पका हुआ। (**प्रज्ञ**) बुद्धिमान। (**तुर**) वेगवान। (**पथिप्रज्ञ**) ज्ञान मार्ग पर चलने वाला। (**सहिष्णु**) सहन करने वाला। (**अनृत**) असत्य, झूठ। (**असुर**) राक्षस। (**आयद**) समतुल्य, अनुरूप। (**ऐष्णा**) इच्छा। (**वितत**) विस्तृत, विपुल। (**ज्वल**) शोभा, वैभव। (**रिपु**) शत्रु।*

33. आओ देवों के मार्ग पर चलें

आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनु प्रवोळहुम्।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात्सेदु होता सो अध्वरान्त्स ऋतून्कल्पयाति॥

ऋः १०.२.३, अथर्व. १९.५९.३

722 तर्जः *पुरुनरू पुष्पमाय इन्ने पुनीरून्न (राग-मेघ मल्हार)*

यज्ञ के तंतु से बँधे ही रहना देवों का मार्ग है प्यारा (2)
देखो ये सूर्य-चन्द्र अग्नि पृथ्वी संवत्सर कर रहे यज्ञ-उजारा,
आओ देवों का ये मार्ग सदा रखें उघारा॥ ॥यज्ञ के तंतु॥

इन सारे देवों के यज्ञपालन में होता नहीं है व्यतिक्रम, (2)
ऐसे ही मन बुद्धि प्राणेन्द्रियाँ करें देह-यज्ञ का शिव संगठन,
देवों का देव परमात्मा महादेव करता ब्रह्माण्ड-यज्ञ सारा॥
॥यज्ञ के तंतु॥
इस मार्ग पर यदि चलने का मन है शक्ति को अपनी तोलो, (2)
इस पर भी यदि तुम स्थिर रह सकोगे तब मार्ग चलने की बोलो,
आत्मा है अग्रणी तेज पुञ्ज अध्वरी यज्ञ बिन ना उसका गुजारा॥
॥यज्ञ के तंतु॥
विद्वान आत्मा है देव मार्गदायी, ज्ञाता है सारे यज्ञों का, (2)
यज्ञ निष्पादन में उसकी कुशलता उसको बना देती 'होता'
मन्द्र जनों को ना हानि पहुँचाता ऐसा अहिंसक वो न्यारा॥
॥यज्ञ के तंतु॥
उध्वर-यज्ञ रचाये शिवात्मा, हर ऋतु में कालानुसार, (2)
काल-अकाल विचारित यज्ञ ही होता है भली प्रकार,
आओ बनें पथिप्रज्ञ इसी यज्ञ के, जीवन सफल हो यज्ञ द्वारा॥
॥यज्ञ के तंतु॥

---

*(**तंतु**) विस्तार, वंश परम्परा (**उधारा**) खुला हुआ, (**व्यतिक्रम**) उलटा, पुलटा, अव्यवस्थित (**शिव**) कल्याणकारी। (**अग्रणी**) आगे ले जाने वाला। (**अध्वर**) हिंसा रहित यज्ञ। (**निष्पादन**) प्रस्तुत करना। (**'होता'**) यजमान, याजक, यज्ञ करने वाला। (**शिवात्मा**) कल्याणकारी आत्मा। (**पथिप्रज्ञ**) विद्वता के मार्ग पर चलने वाला।*

34. रथारोही का उद्‌बोधन

यं कुमार नवं रथे मचक्रं मनसाकृणोः।
एकेषं विश्वतः प्राञ्च मपश्यन्नधि तिष्ठसि॥ *ऋ : 10.135.3*

834 तर्जः *पुलयिल यन्द कादल उदने जेतदः 824*

मानव जाग, जीवन को लक्ष्य दे
रथ को उधर ही मोड़ जहाँ अन्तिम लक्ष्य है।
रथ का समय तो शत वर्ष का है
रथ का निर्वाह सही ढंग से कर
बैठ तू ना आँखें बन्द कर
तीव्र गति से रथ आगे कर॥ मानव जाग...

(1) इक रथ है बिन पहिये चलता, सदा नवीन ही रहता
उसमें ईषा-दण्ड लगा है, चहुँ दिशि दौड़ा करता
इक शरीर, इक मेरूदण्ड है, जिसमें आत्मा रहता
रथि आत्मा बुद्धि सारथी, इन्द्रियाँ घोड़े मन लगाम है।
बन गया रथ अब चलने दे, इसको चलाना ठीक से सीख ले,
वरना लक्ष्य पे पहुँच कठिन है, बीती जवानी तो दिन कम हैं मानव जाग...

(2) अनुपम रथ पे बैठ के अब तक पहुँच चुका होता
पर तू आँखें मूँद के बैठा, रह गया तू सोता
लक्ष्य अगर मालूम नहीं तो, कैसे रथ को जोता?
सारथी का कोई दोष नहीं है रथारोही खोटा
ना उच्च लक्ष्य है ना दृढ़ संकल्प, अनभीष्ट मार्ग है बुद्धि है अल्प
खा रहा चक्कर यूँ ही व्यर्थ, जीवन का ना लक्ष्य ना अर्थ...मानव जाग...

(3) इक दिन रथ तुझसे छिन जाएगा, फिर पछताएगा
इसलिये सारथी को आदेश दे, सही मार्ग ले जाएगा
जो निर्धारित लक्ष्य है तेरा भूल ना जाएगा
प्रेरणा वेद की हृदयंगम कर, पूर्ण सफल हो जाएगा।
बन्धु प्रभु, तू सामर्थ्य दै, जीवन रथ का चालन-बल दे
उत्तम लक्ष्य पे सरपट चल के दृढ़ संकल्प से सही राह का बल दे॥
मानव जाग...

---

*(**ईषादण्ड**) मेरूदण्ड (**अनभीष्ट**) अनिष्ट कर अनैच्छिक (**हृदयांगम**) मन में बैठा हुआ।*

35. आत्मन् यज्ञ का संचालन

इमं नो अग्न उप यज्ञमेहि पञ्चयामं त्रिवृतं सप्ततन्तुम्।
असो हव्यवाळुत नः पुरोगा ज्योगेव दीर्घ तम आशयिष्ठाः॥ ऋ. १०.१२४.१

715 तर्ज : *पुलर वेईलुम पगल मुगिलुम-2228*

हे आत्मन् नींद से जाग, कर जीवन यज्ञ का संचालन
मोहान्धकार में क्यों पड़ा यज्ञ का कर ले विचारण
या विमुख ना तू हो तम की गुहा में ना कर आसन॥ ॥हे आत्मन्॥

बन पुरोगा, कर नेतृत्व कर अध्यक्षता नित यज्ञ की
जीवन यज्ञ की त्रिवृत् अवस्था, बाल्य यौवन वार्द्धक्य की
त्रिसवन है यज्ञ (2) आ ऽ ऽ ऽ ऽ
आयु के त्रिचरण में होवे यज्ञ का प्रणयन॥ ॥हे आत्मन्॥

पंचायाम है ये याजन पञ्चयमों में है नियन्त्रित,
अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य अपरिग्रह के आश्रित
पालन इसका कर (2) आ ऽ ऽ ऽ ऽ
पंचयामी याजक तो करता जीवन पावन॥ ॥हे आत्मन्॥

सप्त ऋत्विज करते सतत् अविघ्नित याजन नित
पञ्च कर्मेन्द्रियाँ प्राण अपान जीवन यज्ञ के हैं ऋत्विज
सप्त तन्तु प्रवर (2) आ ऽ ऽ ऽ
ज्ञान कर्म के हव्य, बने यज्ञ साधन ॥हे आत्मन्॥

हव्यवाट् बन हे आत्मन्! कर ले वहन आहुति को
बिना तुम्हारे पहुँच गया यज्ञ अवरोधित स्थिति को
ज्ञान कर्म को (2) आ ऽ ऽ ऽ ऽ
विषय बनाकर कर याज्ञिक भाषन

---

*(**आसन**) निवास। (**पुरोगा**) आगे ले जाने वाला अध्यक्ष। (**त्रिवृत्**) तिगुना। (**त्रिसवन**) तीन स्थानों या स्थितियों का यज्ञ। (**वार्द्धक्य**) वृद्धावस्था, बुढ़ापा। (**त्रिचरण**) तीन स्थिति या विभाग। (**यज्ञ प्रणयन**) यज्ञ करना। (**पञ्चायाम**) पाँचयमों से चलने वाला (सत्य अहिंसा अस्तेय ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह)। (**सप्तऋत्विज सप्ततन्तु**) (5 कर्मेन्द्रियां प्राण व अपान) याज्ञिक कर्मकाण्ड करने वाला। (**राधन**) साधन। (**हव्यवाट्**) हव्यों का वहन करने वाला। (**भाषन**) प्रकाशन, दीपन।*

36. अमति क्षुधा और निर्धनता दूर करें

गोभिरिष्ट रेमामतिं दुरेवा यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम्।
वयं राजाभिः प्रथमा धनानि अस्माकेन वृजनेना जयेम॥ *ऋ.१०.४२-४४.१०*

970 तर्जः *पुलरीयल पुन्दीन्ग कुड़ तुन्न MP3 (राग-यमन)*

अमति निर्धनता त्रुटियाँ और क्षुधा दूर करो।
हे पुरुहूत इन्द्र हम उलझे जीवन में
हे प्रभो! प्रेरक सहायक तुम बनो
तुमको पुकार रहे आओ विपदा हरो॥
प, प, मप, पपमप आ ऽ ऽ ऽ ऽ
सा सा रे ग पमगरे नीरेग, सा, रे ग
धनीरे, धनीरे, धनीरेग, म सां नी पम रे, सा ऽ
हम नहीं चाहते हैं कि पंगू बनें
इसलिए प्यारे प्रभु हममें उद्यम भरें
अपनी त्रुटियों से भी सीखते ही रहें
आप इसमें हमारे सहायक बनो
निर्धनता अमति क्षुधा दूर करो (2)
क्षेमकारक प्रभु सबका कल्याण करो॥ अमति...
त न न ना, न, तन ननना, न, त, न, तन ननना, तनन तननना, त न न न न ना ऽ ऽ
मन में होवे अविद्या प्रभु जब कभी
और कर्तव्याकर्तव्य की हो कमी
होते जाते दुराचरण से जब पतित
वेद विद्या के शुभ ज्ञान से हों प्रेरित
वेद विज्ञान से मेघा-प्रज्ञा बढ़े (2)
ऐसे कल्याण की वर्षा हम पे करो॥ अमति...
जब हमारा समाज क्षुधा से तड़पे
अन्न धन धान्यों से आप भण्डार भरें
वेद में पञ्च वर्ग की हैं औषधियाँ
प्रोत्साहन कृषक को भी देते रहें
सच्चे गोधन, धन को कमाते चलें (2)
और निर्धनता राष्ट्र की दूर करें॥ अमति...
अपने लक्ष्य पे जब हम तो चल ही पड़े
प्रभु आप भी इसमें सहायक बने,
सारी ऋतुओं में कल्याण-नूर भरें,
हम सबों को समृद्धि से पूर करें
अपने उद्योग से खुद को उन्नत करें (2)
और राष्ट्र सेवा में भी तत्पर रहें॥ अमति...

37. दोहरा प्यार

१ २ १२२ १२ २ २ १ २ २ १ १ १ २ २१२ ३१२ १२

प्राणा शिशुमहीनाꣳहिन्वन्नतस्य दीधितिम् । विश्व परि प्रिया भुवदध द्विता॥

साम. 590. १०१३

732 तर्जः पूजा विम्बम सीतिरनोवो तानी नड़कुड़-720
(राग-अहीर तोड़ी)

पूजा था तुम्हें पिता मानकर मातृ स्नेह का लाड़
करते हैं तुम्हें प्यार प्रभुजी मान के शिशु तुम्हें आज
कुछ अलौकिक सी है भावना, तुम बछड़े हो गाय हैं हम
बछड़ा गैया का प्राण ही तो है, चूमना चाटना गैया का जीवन
॥पूजा॥

दूध पिलाती तन्मयता से चूम चाट सुथरा करती
इक भी तिनका यदि हो तन पे जुबाँ से अपनी हटाया करती
है पराकाष्ठा उसके प्यार की है निस्वार्थ गऊ का अनुराग(2)
॥पूजा॥

ये निस्वार्थ सेवा ही यज्ञ है, इसको ही कहते हैं आत्महुति
इसका रहस्य तो माँ ही जाने, आहुति है ये मात-वसु की
मानव मात्र की मात है ऐसी आत्म समर्पण है उसका अवाच (2)
॥पूजा॥

सोते जागते चलते फिरते मात-जीवन का केन्द्र है बालक
गर्भ से लेकर जन्म तलक सुख न्योछावर करती वो पालक
ध्यान में रखती उसका खाना पीना सोना हो या विलाप॥ (2)
॥पूजा॥

चाँद तो सबके मन को भाता, पर माता की दृष्टि अलग
बालक चाँद को देख उछलता देखो तब माता की हरख
खेल खिलौने तस्वीरों पर बैठ जाता माँ का अनुराग।(2)
॥पूजा॥

यज्ञ की यही मनोवृत्ति हमारी हृदय में आके बसी है
शिशु रूप में प्रकट हुए तुम अब किस बात की कमी है

जो कुछ समझा था है हमारा तुमको समर्पण किया अवस्तात् (2)
॥पूजा॥
इस शरीर के हर इक अङ्ग का हार्दिक भाव है 'इदन्न मम'
जीते हुए तेरी पूजा कर सकें इसलिये खाते पीते हम
भाग ले सकें यज्ञ में तेरे अतः स्वास्थ्य रक्षा, उत्साह(2)
॥पूजा॥
अब तुम शिशु हो हम हैं माता हम गैया तुम बछड़े
प्यारा लगने लगा जगत ये क्योंकि हो गये हो तुम अपने
आने लगा है दोहरा आनन्द भी, बछड़े ने गौ को किया आत्मसात।(2)
॥पूजा॥
अणु अणु अङ्ग अङ्ग हुआ तुम्हारा, इसलिये हुआ जीवन बहुमूल्य
फिर क्यूँ हम इसे व्यर्थ गँवायें, शक्ति तुम्हारी मिली अतुल्य
लाज रखो प्रभु इस जीवन की, देते रहो निज प्रेम-प्रसाद (2)
॥पूजा॥

---

*(**अलौकिक**) अद्‌भुत (**सुथरा**) निर्मल, स्वच्छ (**पराकाष्ठा**) चरम सीमा, हद (**अनुराग**) प्रेम (**आत्महुति**) आत्मा का यज्ञ (**वसु**) बसने वाला (**अवाच**) मौन (**विलाप**) रोना, रुदन (**अवस्तात्**) आखिर, अंततः (**इदंन्न मम्**) ये मेरा नहीं (**आत्मसात**) अपने जैसा करना*

38. हम सखाओं की सुध लो

अभिख्या नो मघवन् नाधमानान् त्सखे बोधि वसुपते सखीनाम् ।
रणं कृधि रणकृत सत्यशुष्मा ऽभक्ते चिदा भजा राये अस्मान्॥

ऋ.१०.११२.१०

879 तर्जः *पूजा बिम्बम मीतरन्नु ताने 720*

अर्पण करते कृतज्ञता की कुसुमाञ्जलि हम तुमको
दिव्येश्वर्यों का पात्र बनाओ दूर करो अवगुण को
राजराजेश्वर हो तुम प्रभुजी लेकिन हम हैं अति निर्धन
देखो हमें निज कृपा दृष्टि से होवें ना उपेक्षित प्रभु हम॥
अर्पण करते...

जानते हैं हम तुम ही कहोगे क्यों नहीं करते पौरुष?
पौरुष तब फलदायक होगा होगी कृपा जब अनबुझ
जीवनयापन करे समृद्धि दे दो उतना ही भगवन्॥
अर्पण करते...

बनके सुदामा द्वार पे आए बन जाओ कृष्ण कृपालू
तुम वसुपति हो सद्गुणदायक हम हैं तुम्हारे श्रद्धालू
हृदय मन्दिर को प्रकाशित कर दो, प्यारे वसुवित भगवन्-2
अर्पण करते...

सच्चरित्रता दया सहिष्णुता न्याय दान उदारता
परोपकार सेवा भक्ति-मन पुरुषार्थ व प्रबलता
सत्य सनातन नियमों को पालें, धारें हम शुद्ध आचरण-2
अर्पण करते...

हे रणकर्ता! छेड़ दो संग्राम बल है अनन्त तुम्हारा
मार दो अंतःकरण के शत्रु, कर दो उद्धार हमारा
बाधक बने ना शत्रु राह में शत्रु विजित बनें हम -2
अर्पण करते...

(कृतज्ञता) *उपकार मानना।* ***(उपेक्षित)*** *अस्वीकृत।* ***(पौरुष)*** *पराक्रम।* ***(कुसुमाञ्जली)*** *श्रद्धामय हाथों से समर्पित पुष्प।* ***(वसुपति)*** *धन-पालक।* ***(वसुवित)*** *बसाने वाला।* ***(सहिष्णुता)*** *सहनशीलता।* ***(विजित)*** *जीता हुआ।*

39. हम स्वप्न में भी निर्भय होंवें

यो मे॑ राज॒न्युज्यो॑ वा॒ सखा॑ वा॒ स्वप्ने॑ भ॒यं भी॒रवे॒ मह्य॒माह॑।
स्ते॒नो वा॒ यो दिप्स॑ति नो॒ वृको॑ वा॒ त्वं तस्मा॒द्रूण पाह्य॒स्मान्॥ *ऋ. २.२८.१०*

922 तर्ज़ : *पूतालम पलमकई निन्दी वासन्दम–1129*

क्या कारण है प्रभुजी क्यों है भय भरम
झुक जाते हैं बन्धन के कारण
हैं दो रीत के ये बन्धन
करते हैं हमको अनमन
॥क्या कारण॥

एक तो आत्मिक भय है
पारिवारिक रिश्तों में तय है
माता-पिता पुत्र-पुत्री
भाई-बहन पति-पत्नी
हो जाता है इन से भय
जब आता है कठिन समय
उस वक्त धर्म कर्त्तव्य को भूल
आत्मविरुद्ध करते अनय
॥क्या कारण॥

शत्रु भी हैं कष्ट दायक
वैर इनका भी भयकारक
हानि करते धन माल की
डाकू और चोर हैं घातकी
होता नहीं हमें भी सहन
हम भी कर बैठते हैं पाप ही
भय ही कारण है अवनति का
हमको बनाता है पातकी॥
॥क्या कारण॥

दूजा है हमको पशुओं का डर
शेर चीते भेड़िये अजगर
जाते नहीं उनके सामने
या दुश्मन हम उनके प्राण के
चाहें तो उनको प्रेम से
कर लेवें अपने वश में
या उनको उनके ही वन में
ले जाएँ प्रेम से रखने
॥क्या कारण॥

प्रभु की उपासना से हम
क्यों नहीं जाते उसकी शरण
ईश्वर हमें ऐसी शक्ति दे
मिट जाए मन से भय भरम
जागें या सोयें, रहें अभय
अभय रहें हम हर समय
हे मेरे आत्मा! आ प्रभु शरण
अन्तःकरण तू कर दे निर्भय॥
॥क्या कारण॥

---

*(**अनमन**) खिन्न, उदास (**अनय**) अविनीत, विनय रहित। (**पातकी**) गिरा हुआ, अधम।*

40. अग्निहोत्र

३ १ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २
राये अग्ने महे त्वा दानाय समिधीमहि।
१ २ ३ २ ३१ २३ १२ ३ १२ ३२
ईडिष्वा हि महे वृषं द्यावा होत्राय पृथिवी॥ *साम. ६३*

729 तर्जः पूमानमे उरू राग मेयुमता-719

आग जलाई हमने इसलिये कि दान करें
यज्ञभावनाओं का ये हृदय सम्मान करे
कितना है विशाल यज्ञ का नित प्रवाह प्रतिपल॥ ॥आग॥
अपने आपको जब तक हम, नहीं समझते, विश्व का अङ्ग
कर नहीं सकते यज्ञ
हर समय रोम रोम हमारा, यज्ञ भावों से ही सँवरा
बस उसकी चिंगारी बनें॥ ॥आग॥

भौतिक जग का, भौतिक ताप, आश्रय जिसे, अग्निदेव का प्राप्त
अग्नि वो आध्यात्मिक;
योगी को हार्दिक लपटें दिख रहीं धूनी के जैसे
हृदय में सतत् जले॥ ॥आग॥

हे अग्निदेव! तुम मेरे, छोटे से कुण्ड में, खूब जले
ज्योति के दर्शन दिये
किया यज्ञ तो ये जाना, होवे 'अयंत इध्म आत्मा'
आत्मा तेरा ईंधन बने ॥आग॥

तुम ही जानो मेरे सूखे काठ से, हुए तुम प्रदीप्त हो या तो नहीं
पर इतना तो मैं जानूँ
जो जल रही समिधा सतत तेरी ही तो है आत्मा वो
आत्मवान् अग्निदेव अरे! ॥आग॥

झाँकियाँ देखें मानस नैन, झाँकियों ने किया बेचैन
पूर्ण दर्शन किमि होय?
आत्मवान् अग्नि देव की लपटें, इक झाँकी में कैसे समाये?
दर्श को जिया मचले॥ ॥आग॥

दो समिधाएँ करो स्वीकार, पृथ्वी लोक की व द्युः पार
फूँक दूँ लोक-परलोक,
फूँक दूँ जमीन और आसमान फूँक दूँ शरीर दे दूँ आत्मा
तब कहीं दरस मिले॥ ॥आग॥

पृथ्वी, मेरा है ये शरीर और द्युलोक आत्मा-धीर
भेंट करुँ परमात्माग्नि में
दे दी है आत्मा इस विश्व को, और दिया है विश्व आत्मा को
दान ये लेन-देन करे॥ ॥आग॥

अग्निदेव की प्रिय झाँकी, समा रही अङ्ग-अङ्ग में
बना के निज ईंधन
व्यापक जिह्वा बनी ज्वाला, हृदय कुण्ड हुआ उजियारा
द्युः पृथ्वी से परे॥ ॥आग॥

हे अग्निदेव कृपा तुम्हारी, होत्र तुम्हारे के आभारी
होता अद्भुत रमणीय
त्याग-दान की सुन्दर ख्याति,
विश्वप्रेम की झिलमिल झाँकी
जागृत हो जग में॥ ॥आग॥

---

*(**धूनी**) धुआँ। (**किमी**) कैसे?। (**जिह्वा**) जीभ। (**होत्र**) हवन।*

41. सदा पवित्र सदा निष्पाप गौऐं

सदा गावः शुचये विश्वधायसः। सदा देवा अरेपसः॥

साम. ४४२

485 तर्जः *पूवे उरु मलयुत्तम नी कविलीकदिन्यवो–1457*

गौओं में पवित्रपन है जो हैं विश्वधाया,
दोषरहित निष्पाप हैं छल छिद्र रहित, अमाया,
निर्दोष दिव्यताओं को आदर्श हम बनायें
बनके स्वयं समुज्ज्वल गुण वैसा उपजायें
इन्द्र वरुण यम विष्णु रुद्र अग्नि का हो साया॥ ॥गौओं में॥

अमृतमय दुग्ध पिलाकर करती हैं गौऐं पोषण
गौओं का पय तो अमी है गोबर, नवनीतोत्तम
उसके तो मूत्र से होते कितने ही रोग-निवारण
वेदों की वाणियाँ गौऐं हैं जिनके पवित्र स्वन
वेद वाणियाँ करें पावन, मन्त्रज्ञ करते गायन
शुचि मन्त्रों का ये उपदेश जीवन का बने सहारा
॥गौओं में॥

तीजी गौ सूर्य किरणें, करें शर से शर्वर-शमन
मेघों का प्रखर प्रभा से करती कृतार्थ जनन
वसूत्तम बनती वसुधा वर्षधर जब बरसे
वनस्पति प्राणियों के, मन हृदय रस सरसे
मन बुद्धि देह इन्द्रियाँ (2) आत्मा सब शुद्ध बनते
विश्व में आनन्द शांति की देवें तद्रूप छाया॥
॥गौओं में॥

निर्मल निर्दोष जो होते, दिव्य देव वही कहाते
शालीन शिव श्रेयस्कर श्रेष्ठ समाज बनाते
सूर्यचन्द्र अग्नि वायु ऋतु संवत्सर हैं दैविक
माता पिता विप्राचार्य गुरु अतिथि देव कहाते
यदि गति में इनकी दोष आये (2)चक्र सृष्टि के बिगड़ें
गति निर्दोष है क्योंकि इनमें दृढ़ देवत्व समाया॥
॥गौओं में॥

इन्द्र विष्णु रुद्र वरुण यम सब तेरे हैं ऋजु रूप
सब हैं पवमान प्रतिष्ठित परिपूर्ण ज्योति स्वरूप
निभ्रम निर्दोष निरागस, निरातंक तू है निरूप
तेरा ध्रुव ध्यान धरें बन जायें परिपूत
छलछिद्र छद्म होवे छिन्न (2) उज्जवल जीवन बना दें
उत्तम उज्जवल पायें प्रभुजी तेरी शीतल छाया॥

॥गौओं में॥

---

*(**विश्वछाया**) विश्व का पालक। (**छलछिद्र**) कपट व्यवहार। (**छद्म**) धोखा। (**अमाया**) पवित्रता सच्चाई। (**पय**) दूध। (**अमी**) अमृत। (**नवनीत**) मक्खन। (**स्वन**) शब्द। (**मन्त्रज्ञ**) मन्त्र को जानने वाले। (**शुचि**) पवित्र। (**शर**) बाण। (**शर्बर**) अन्धकार, तम। (**शमन**) निवृत्ति, दूर करना। (**कृताथी**) सन्तुष्ट, दक्ष। (**जनन**) जनम, पैदा करना। (**वसुधा**) धरती। (**वर्षधर**) बादल। (**तदूप**) समान, तुल्य। (**ऋजु**) सरल। (**निर्भ्रम**) शंका रहित। (**निरागस**) पाप। (**निरांतक**) भय रहित। (**परिपूत**) पूर्ण पवित्र।*

42. देव मुझे पवित्र करें

पुनन्तु॑ मा देवजनाः पुनन्तु॒ मन॑वो धि॒या।
पुनन्तु॒ विश्वा॑ भू॒तानि॒ पव॑मानः पुनातु मा ॥1॥

अथर्व ६.१६.१

804-तर्ज : *पूवे वाद सम्बोद–564*

ढूँढता हूँ मैं वे लोग, जिनसे पाऊँ मैं बोध
कब से रहा उन्हें खोज; पाना है ज्ञान ओज
उनके सान्निध्य को सार्थक कर दे
तू भी स्वयं मुझे धन्य कर दे। हे पवमान, पावन कर दे॥

शरण देवों की करती पावन, बरसाती जो ज्ञान का सावन(2)
देते दिखाई उन्हे जब प्यासे, प्यास अपात्रों में भी भरते,
देवों से पाते हैं स्नेह और मार्ग भी, सच्चा श्रेय (2)
जीवन में इनकी शुभ सत्यता से भाविक कर दे॥

ढूँढता हूँ...

दिव्य गुणों को, यदि मानते हो, देवगणों को भी जानते हो (2)
अन्तःकरण हैं उनके शुद्ध, ज्ञान-कर्म में हैं वो प्रबुद्ध

इन्द्रियाँ हैं उनकी पवित्र, इसलिए वो सबके मित्र (2)
हर व्यक्ति के हृदय में उनकी अमिट छाप कर दे।

ढूँढता हूँ...

ऐसे देव तो सदा देते हैं, बदले में ना कुछ वो लेते हैं (2)
जो भी गुण हों या होंगे पदार्थ, दे देते हैं वो निस्वार्थ
हो अन्न ज्ञान या स्नेह, उपदेश शान्ति या धैर्य (2)
शुभकामना, आशीश, सुखों की, वर्षा कर देते हैं॥

ढूँढता हूँ...

करें देव शुद्ध बुद्धि और मन, शुभकर्मों में होते आसन्न (2)
कर्म आचरण, होते सहज, मानवता की जागे समझ
हमें आत्मसात करें देव, सम्मुन्नत करने का ध्येय (2)
ये देव हमारे बुद्धि, ज्ञान क्रतु उन्नत कर दें॥

ढूँढता हूँ...

सब प्राणियों में स्वसम देखें, हम भी आत्मवत् उनको समझें, (2)
दुर्व्यवहार किसी से ना करें, ईर्ष्या द्वेष घृणा से बचें
कोई कहे ना हमें अभद्र, करें दूजों की हम कद्र (2)
हम देवें ना धोखा और छल का मौका, भूल कर ना करें॥

ढूँढता हूँ...

श्रद्धा भक्ति का हूँ मैं प्रार्थी तुम ही हो हर पल मेरे साथी (2)
मन बुद्धि आत्मा हो उन्नत, ज्ञान विवेक भी करो जागृत
भीतर बाहर की शुद्धि, हो प्रेम स्नेह की वृद्धि (2)
बस तेरी कृपा से मुग्ध हुआ हूँ, धन्य मुझे कर दे॥

ढूँढता हूँ...

---

*(**भाविक**) मर्म जानने वाला। (**समुन्नत**) अत्यधिक बढ़ा हुआ। (**आसन्न**) लगा हुआ। (**प्रबुद्ध**) सचेत, खिला हुआ। (**श्रेय**) श्रेष्ठ, कल्याण करने वाला।*

43. इन्द्र की अर्चना

इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः। ऋतस्य योनिमासदम्॥

साम. ४७२, १०७६ ऋ. ९.६४.२२

598-तर्ज : *पेररियातुर मुम्बरते प्रेम मिन्नारो विरिच्यू ॥124*

हे मेरे प्राणों के प्राणपति! पूजा तुम्हारी का इच्छुक
अपनी संजीवनी से मेरा जीवन कर दो उज्जीवित परिस्फुट (2)
॥हे मेरे॥

प्राण प्रबल, मेरा स्वास्थ्य शरीर है, अङ्ग प्रत्यङ्ग में है स्फूर्ति
ना मैं कभी चाहूँ बैठूँ निठल्ला, इन्द्रियों में दो प्रभूति
सब कुछ है फिर भी जीवन नीरस है, रस से विहीन हूँ विच्युत॥ (2)
॥हे मेरे॥

अभिमान से है भरित मेरी शक्ति पर ऐंठन में मधु-रस कहाँ?
मधुरस तो मिलता है, प्रेम-प्रणति में बसते हैं ईश्वर जहाँ,
आनन्द तो पाता है निरभिमानी, बनता वो प्रमुग्ध-प्रस्फुट। (2)
॥हे मेरे॥

स्थिर रस तुम्हारी कृपा-कोरों में है मैंने सुना ऐसा कहते
प्रेमझरित है आकाश गङ्गा में चान्दनी चाँद ही देते
हो मेरे चित्त के चरित चाँद चारु और मैं चकोर हूँ प्रस्त्रुत (2)
॥हे मेरे॥

सोम तुम्हारी ही स्निग्ध किरणों से प्रकृति सारी सरसती
आर्द्र न होता तुम्हारा हृदय तो सृष्टि संसृष्टि ना बनती।
समझा हूँ निज ताप का सही कारण तुझसे हुआ ना मैं संस्तुत (2)
॥हे मेरे॥

अब ना रहूँ तेरी संदृष्टि से दूर, नैवेद्य-पुज् मेरे प्राण
इन्द्रियाँ मेरी अर्चना-पुष्प हैं आत्मा मेरा मधुद्यान
पूजा का नवजीवन उदित हुआ है मनआत्मा कर दो परितृप्त॥ (2)
॥हे मेरे॥

---

*(**परिस्फुट**) पूर्ण विकसित। (**प्रभूति**) शक्ति, बल। (**विच्युत**) पथ विचलित। (**भरित**) भरा हुआ। (**ऐंठन**) अकड़न, दुरभिमान। (**प्रणति**) विनम्रता। (**प्रमुग्ध**) अत्यन्त प्रिय। (**प्रस्फुट**) पूर्ण विकसित। (**चरित**) प्रस्तुत, अनुष्ठित। (**चारु**) सुन्दर, मनमोहक। (**प्रस्त्रुत**) उमड़ा हुआ। (**संसृष्टि**) एक ही परिवार में मिलकर रहना। (**संस्तुत**) परिचित। (**नैवेद्य**) पूजा का सामान। (**मधुद्यान**) मधुरस का बगीचा। (**परिप्लुत**) तर।*

44. जीवन की रात में जिसे तू आ मिले

आरे अस्मदमतिमारे अंह आरे विश्वां दुर्मतिं यन्निपासि।
दोषा शिवः सहसः सूनो अग्ने यं देव आ चित् सचसे स्वस्ति।

ऋ. ४.११.६

755-तर्ज : पोयवरुवान कूड़े वरू पोरमगळे-1388

हे करुणाकर! हे भगवन्! सद्बुद्धि वर्द्धक आनन्दधन।
पाप-प्रवाह से हमें बचा लो और दिखा दो अपनापन!
॥हे करुणाकर॥

पाप-प्रवाह में, आत्मा से इन्द्रियाँ, विद्रोही बन जाती हैं
आत्मा के वश, ना वो रहतीं, विचल विमुख हो जाती हैं।
॥हे करुणाकर॥

घोरान्धकारक, आसुरी लोक में, मरकर पापी आते हैं।
आत्मघाती को नये जन्मों में, पाप अन्धकार सताते हैं॥
॥हे करुणाकर॥

जागते जब, सत्कर्म मनुष्य के, तब तुम मिलने आते हो
हे महाबल, प्रियवर अग्ने! सोये भाग्य जगाते हो॥
॥हे करुणाकर॥

घोर सन्नाटा रात्री में छाए, ध्यान में आपके हो जाएँ
हमें अकेला भटका समझकर, आप मिलन में खो जाएँ॥
॥हे करुणाकर॥

नास्तिकता फिर कैसे रहेगी और मन में संदेह कहाँ?
प्रेम विनय श्रद्धा के समर्पित संग खड़े हैं देव यहाँ॥
॥हे करुणाकर॥

अब ना अनास्था, ना ही अश्रद्धा पङ्क पाप का फिर है कहाँ?
आने ना देना फिर से अमति को, ना तुम्हें दूँ मैं गवाँ॥
॥हे करुणाकर॥

सा म प ध प ध प म
प ऽ नी ध प ऽ ग सा प प ध प म।

(विचल) *अस्थिर।* ***(विमुख)*** *विपरीत, निराश।* ***(विद्रोही)*** *द्वेषी, उपद्रवी।* ***(अनास्था)*** *भक्तिहीनता।* ***(अमति)*** *असम्मति।* ***(पङ्क)*** *कीचड़।*

45. बृहस्पति का सखित्व

त्वया॑ व॒यमु॑त्त॒मं धी॑मह॒े वयो॒ बृह॑स्पत॒े प्रप्रि॑णा सस्निना यु॒जा।
मा नो॑ दु॒ःशंसो॑ अभिदि॒प्सुरी॑शत॒ प्र सु॒शंसा॑ म॒तिभि॑स्तारिषीमहि॥

ऋ. २.२३.१०

734 तर्ज : *पोयवरूवान कूड़ेवरू पोरमगडे इदिले-1388*

हे परमेश! ब्रहस्पति! वेदवाणी के हो अधिपति
ज्ञान के तुम ही हो अधीश्वर शुद्ध स्वरूप हो 'पप्रि'॥
॥हे परमेश॥

तुम ही सबके हृदयों में बैठे, कर्तव्याकर्तव्य की
ज्ञानधारा को बहा रहे हो धारा है ये सत्कर्मों की।
॥हे परमेश॥

सबके जीवन के पूर्णता कारक शुद्ध स्वरूप हमारे 'पप्रि'
शुद्ध करन हारे हम सबके, तुम हो हमारे सस्त्रि ॥
॥हे परमेश॥

जिसके सखा तुम बन जाते हो उसके व्यवहार निखरते।
शुद्धता पूर्णता से अनुकरणीय जीवन जाग्रत तुम करते॥
॥हे परमेश॥

प्रभु जी हमारे सखा बन जाओ जीवन पूर्ण पवित कर दो।
आत्म-बुद्धि-मन प्राण चक्षु श्रोत्र के, छिद्रों को भर दो॥
॥हे परमेश॥

इस संसार में दुःशंस दिप्सु घात लगाये बैठे हैं
चाहते हैं अपकीर्ति हमारी बुरी सलाहें देते हैं॥
॥हे परमेश॥

हे ब्रहस्पति प्रभु! बल आशीश दो करते रहें शुभ चिन्तन
होके सुशंस गायें शुभमङ्गल करें शुभ-स्वागत हरदम॥
॥हे परमेश॥

(पप्रि) *पालन पूरण करने वाले।* ***(सस्त्रि)*** *स्वयं शुद्ध पवित्र और समपर्क में आने वाले को पवित्र करना।* ***(दुःशंस)*** *शिकंजे में कसने वाले घाती।* ***(दिप्सु)*** *हिंसक।* ***(पाश्विक)*** *पाशों में बाँधने वाले।* ***(सुशंस)*** *शुभ एवं शुद्ध व्यवहार करने वाले।*

46. कहाँ जाएँ?

वयः सुपर्णा उप सदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः।
अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्य१स्मिन्नधयेव बद्धान्॥ *ऋ.१०.७३.११*

072 तर्जः *प्रणय सन्गान्ती तिंगळ इदि विरन्य कालम-738*

दृष्टि दे दो हे आत्मन्! दर्शनशक्ति आ जाए,
तम का उठा दो परदा, सूक्ष्म दृष्टि पा जाएँ,
बन्धन हमारे तुम काटो, सुप्रकाश अपना हमें बाँटो
तव इन्द्र शरण पा जाएँ॥ ॥दृष्टि दे दो हे आत्मन्॥

(1) पाँच इन्द्रियाँ ज्ञान की सबके शरीर में रहती हैं।
पंछियों के जैसे इत उत बस उड़ती फिरती रहती हैं।
पाँच-विषय के रसों में उलझी,
तृष्णा हमारी पलपल और बढ़ाये॥ ॥दृष्टि दे दो हे आत्मन्॥

कान जीभ आँखें जब खोलें, जगत विविध दिख जाए
ऐसा जादू करे, हम पे इन्द्रियाँ हमें भरमायें।
तृप्त कर सकें कभी ना हमको,
मार्ग में देखो खड़ी हैं लाखों तृष्णायें॥ ॥दृष्टि दे दो हे आत्मन्॥

पाँच इन्द्रियाँ बाह्य प्रकाश से तृप्त ना कभी कर पाये।
इन्द्रिय छटी इसी मन द्वारा प्रत्याहार की ज्योत जगाये
उड़ना इन्द्रियों का थम जाए
परिमितता अन्धकार की मिटती जाए॥ ॥दृष्टि दे दो हे आत्मन्॥

देख सके ना अतिसूक्ष्म या अतिदूर ये आँखें
यही इन्द्र आत्मन् जाने शुद्ध ज्ञान प्रकाश की बातें
इसीलिए इन्द्रियाँ इस आत्मा से
उस प्रकाश के लिए ही गिड़गिड़ाये॥ ॥दृष्टि दे दो हे आत्मन्॥

देशकालाव्यवहित दर्शन की शक्ति हममें जगा दो।
हे आत्मदेव! हे इन्द्र सुप्रकाश का मार्ग सुझा दो।
तुझ बिन और कहाँ जाएँ हम,
छाये हुए यहाँ विषय-विषों के साये॥ ॥दृष्टि दे दो हे आत्मन्॥

---

*(**परिमितता**) यथार्थ परमाण, नपातुला। (**अव्यवहित**) व्यवधान रहित। (**सुझाना**) दिखलाना।*

47. तिनके

अग्ने मृळ महाँ असि य इमा देवयुं जनम्। इयथ बहिरासदम् ॥

072 तर्ज : *प्रणय संगति तिन्गळ इदिविरिन्यि-705*

जीवन ज्योति हे अग्ने, तुममे ही समा जाएँ।
लेता हूँ थोड़े तिनके तब प्राणों की धोंकनी से, धौंकने को लगाए॥
॥मेरे जीवन॥

यूँ तो सारा जगत कुशा है इसके सिवा ना कुछ भी
हैसियत मेरी दो तिनको की, उसके भी स्वामी तुम ही
फूँकने को इन्हें सोच रहा मन, इक चिंगारी दे दो यदि तुम भगवन्॥
॥मेरे जीवन॥

जब तक कृपा ना होगी तुम्हारी सर्वमेध होंगे असफल
यज्ञ संकल्पों का सिद्धि पथ, तुम्हीं दिखाते हर पल
क्योंकि तुम्हीं हो यज्ञस्वरूप, तुम ही अनूप हो, मेरे याज्ञिक भगवन्।
॥मेरे जीवन॥

होते नहीं तुम विराजमान प्रभो! बहुमूल्य आसनों पर
कुर्सी चौकी सिंहासनों से प्रेम कहाँ तुम्हें प्रभुवर?
तुम्हें तो केवल कुशा है प्यारी, त्याग-तपस्या का ये अनुपम आसन।
॥मेरे जीवन॥

चार दिनों का है ये मेरा तिनकों का आशियाना
तप त्याग संगतिकरण से जीवन मुझको निभाना।
प्रकट हो रहे इन्हीं में तुम तो, जहाँ तुम्हारा कुशा ही बना सिंहासन॥
॥मेरे जीवन॥

आओ बैठो बिछा तुम्हारा दर्भ कुशा का आसन
तेजोमय करो तपस्वी हे तपोमूर्ति हे ब्राह्मण
'देवयु' बना हूँ तिनकों का, वो भी है तेरा होगा तुझे समर्पण॥
॥मेरे जीवन॥

आओ देव मैं तिनके लाया तुम चिंगारी लाओ
प्राणों की धोंकनी को तुम तब अग्नि को प्रगटाओ।
कर लो आत्मसात तिनकों को, झाँकी दिखाओ प्रेम की मेरे प्रीतम॥

---

*(**कुशा**) तिनका, सूखी घास। (**हैसियत**) मूल्य। (**सर्वमेध**) समस्त यज्ञ। (**अनूप**) अनुपम, अद्‌भुत। (**आत्मसात**) सब प्रकार से अपने आधीन। (**आशियाना**) रैन बसेरा, घर। (**दर्भ**) फाड़ने वाला, विदारक, कँटीला। (**देवयु**) उपासक। (**धौंकनी**) हवा फूँकने की नली।*

48. ज्योति कभी हमसे दूर न हो

मा नो बधैर्वरुण ये त इष्टावेनः कृण्वन्तमसुर भ्रीणन्ति।
मा ज्योतिषः प्रवसथानि गन्म वि पू मृधः शिश्रथो जीवसे नः॥७॥

ऋ. २.२८.७

916 तर्जः *प्रणय स्वरम कादोर, तनेरम मधु पडियु-383*

ऐ मेरे मन! अनमोल है जीवन
ढूँढ़ जीने का उपाय
कदम कदम पर लोभ का डेरा
है तो,
कैसे सँभल पायें? ॥ऐ मेरे मन॥

ये जगत है सुन्दर यज्ञ इसपे दृढ़ दृष्टि देना
करते हैं जब यज्ञ, बनते हैं स्थितप्रज्ञ
भावनाएँ होतीं सत्य, भाव बुरे होते त्यज्य
पाप कर्म ना होते उदय
यज्ञ काल में वाचाल रहती है अपाय ॥ऐ मेरे मन॥

यज्ञ के भाव से ये जग देख, दुरित विचार न लेना
जागे ना ये पाप-वृत्ति, शुद्धाचरण में ही जीना
ये जग तो है आला, प्रभु की है यज्ञ शाला
हो जा तू भी यज्ञमय
पाप कर्म तो डुबाये, यज्ञ कर्म हैं सहाय ॥ऐ मेरे मन॥

सत्याचरण और विवेक मन में धारण करना
इसका जो ले लो ज्ञान, जीवन उत्थान ही करना
प्रभु की ही पाना शरण और करना गुण वरण
पाना है अन्तस्-प्रकाश
पापाचारी दुःख ही पाये, सत्याचारी सुख प्रदाय॥

---

*(**अपाय**) पाप रहित। (**स्थित प्रज्ञ**) विकारों से दूर।*

49. त्वदीय वस्तु गोविन्द

अ॒यम॒ग्निः सु॒वीर्य॒स्पेशं॑ महः सौभगस्य।
रा॒य ई॑शे स्वपत्यस्य गोमत ईशे॑ वृत्र॒हथा॑नाम्॥ *ऋ. ३.१६.१ साम. ६०*

697 तर्ज : *प्रति दिनम ये दक्षिणम मरिनर कुनायदेय–739*

प्रतिनियम से प्रतिदिवन् तू वीर्यशक्ति रखना
है उपाय तू अग्नि देव की नित उपासना करना
आत्मिक चिन्तन मनन संयम प्राणायाम करना॥ ॥प्रतिनियम से॥

ओ मेरी जान, तेरा सौभाग्य रहेगा कीर्तित
तू हर स्थिति में होगा गर परिमार्जित
अग्नि देव की यज्ञ से कर उपासना
यज्ञ की सुघड़ वृत्तियों की रहे शुद्ध कामना।
कभी यथार्थ कर्म में फल की इच्छित वृत्ति में ना बहको
मिले हर्ष, मिले दर्द।
मिले हार, जीत हानि-लाभ, उपरति में रहना॥ ॥प्रतिनियम से॥

यज्ञ में लग लो, बाधायें जितनी आयें सह लो
दुष्ट रोकेंगे, मगर हिम्मत के साथ बढ़ लो
इन्द्र-वृत्र की ये लड़ाई सदा चली है
दृढ़मन यज्ञकाम तो देता सदा बलि है।
पिया है वेदरूपी, कामधेनु के गौ का दूध तुमने
मिले हर्ष, मिले दर्द
मिले हार-जीत हानि-लाभ उपरति में रहना॥ ॥प्रतिनियम से॥

यज्ञ तुम्हारा, तुम्हारा फल भी, मेरा क्या है? कहो ना!
फल मेरे बेफल, सफल निष्फलता को करना
मन के मोहना! मेरा फल देव! तुम ही हो
हे देव! फाग खेलना हो तो तुम फाग खेल लो
तेरे इस फाग में, धन त्याग का, कभी रख ना लूँ मैं दाता
मिले हर्ष, मिले दर्द
मिले हार-जीत हानि-लाभ उपरति में रहना॥ ॥प्रतिनियम से॥

---

*(**प्रतिनियम**) प्रत्येक के लिये एक नियम, (**त्वदीय**) तुम्हारी। (**प्रतिदिवन्**) प्रतिदिन। (**गोविन्द**) ब्रह्मज्ञानी। (**वीर्यशक्ति**) शुभ मंगल दायक शक्ति। (**कीर्तित**) यशस्वी। (**परिमार्जित**) शुद्ध किया हुआ। (**सुघड़**) सुन्दर, निपुण। (**उपरति**) त्याग, वैराग्य। (**वृत्र**) शत्रु। (**इन्द्र**) देवताओं का राजा। (**बलि**) भेंट। (**कामधेनु**) सब इच्छाओं को पूर्ण करने वाली। (**गौ**) गााय (वेदरूपी)। (**फाग**) होली।*

50. हे अग्ने

पदं देवस्य नमसा व्यन्तः श्रवस्यवः श्रव आपन्नमृक्तम्।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियानि भद्राया ते रणयन्त संदृष्टौ॥

ऋ. ६.१.४

325 तर्जः *तेरी वन्नु मुगिले मळ तूवलम करमो 1006/2623*

हे अग्निदेव कल्याण प्रदाता
तुम्हारी महिमा को विश्व गाता॥
तुम्हारे चरणों का दर्श है पाया (2)
मन स्तुतियों से सुहाया (2)
सुखदायक तू दुःख विदारक (2)
तव दया पात्र बनाया
बाह्य यशों की नहीं आकांक्षा
अन्तर यश उपजाता

हे अग्निदेव!...

केवल तेरे नामों का धारण (2)
वाणी पावन करता (2)
भावभरित तव नाम जपन से (2)
शुद्ध हृदय बन जाता
तव कल्याणमयी दृष्टि ही
सुख निर्विघ्न बढ़ जाता॥

हे अग्निदेव!...

इसलिए हे अग्ने! परमेश्वर!
प्रेम का मार्ग दिखाओ
आदि से अन्त तलक ये मारग
शुभ ही चलना सिखलाओ
तेरा दर्शन यश है अनश्वर
यश है तेरी कृपा का॥

(आकांक्षा) *चाह, इच्छा।* ***(विदारक)*** *फाड़ देने वाला।*

51. प्रवाह बहता रहे

त्वामिद्धि त्वायवो ऽनुनोनुवतश्चरान्। सखाय इन्द्र कारवः॥

—ऋ. ८.९२.३३

294 तर्ज : *प्रार्थना सुनिये श्री भगवान 2712*

प्रार्थना सुनिये श्री भगवान
कीजिये जीवन का उत्थान॥

॥प्रार्थना॥

हृदय-भक्ति से चारु होकर
करें परिचरण पारु होकर
हृदय प्रीत झंकार दीजिए
वाणी को वरदान॥

॥प्रार्थना॥

स्तुतिगान-मस्ती में झूमें
बरसें ज्ञानामृत की बूँदें
जगह जगह तव अलख जगायें (2)
लक्ष्य हो कर्म प्रधान॥

॥प्रार्थना॥

स्तुति रूप में धर्म कर्म हो
गुणगाथा संग सत्य-वरण हो
होवे सेवा अतिलयकारी
कर्म वचन मन प्राण॥

॥प्रार्थना॥

जागें स्वयं तो जग को जगायें
व्यापक भजन क्रियामय गायें
तेरी शक्ति, मति-भक्ति का
बहे प्रवाह निकाम॥

॥प्रार्थना॥

---

*(**परिचरण**) पूजा, सेवा। (**चारु**) सुन्दय, प्रिय, रुचिकर। (**पारु**) सूर्य, अग्नि। (**लयकारी**) लय में चलने वाला, लगन पूर्वक। (**अलख**) ईश्वर से भीख माँगना। (**निकाम**) यथेष्ट, बहुत, अत्यधिक।*

52. तेरी देन को कोई नहीं रोक सकता

न ते॑ व॒र्तास्ति॒ राध॑स॒ इन्द्र॑ दे॒वो न मर्त्यः॑। यद्दित्ससि स्तु॒तो म॒घम्॥4॥ ऋ. ८.१४.४

859 तर्जः *प्रियन मात्रम न्यान तरुम मधुर मे प्रणयम 244/256*

रख के सम्मुख लक्ष्य को करता हूँ पुरुषार्थ
कभी तो होता सफल कभी, विफल करते स्वार्थ
कभी बिन प्रयास हूँ सफल
जी तोड़ के भी कभी विफल — रख के...

कारण जब सोचता हूँ तब ही मैं खोजता हूँ
ईश्वर विश्वास की है बात
जिनको मिलती नहीं है पूर्ण सफलताएँ, आती हैं जीवन में तनातनी घात
जब कर्म के संग, ईश-विश्वास की सुगन्ध
आ आ के मिलती है, मन-कली खिलती है
मिलता ही जाता सब यथार्थ॥ — रख के...

हे इन्द्र! जब तुम्हारी, हृदय से स्तुति करता, करता हूँ तेरा ही स्मरण
आध्यात्मिक या भौतिक ऐश्वर्यों की प्राप्ति, तेरे विश्वास में हूँ प्रपन्न
तुम कैसे रुक सकते हो, दान के लिए उत्सुक हो
क्षणभर में चल पड़ते हो, देने को अभिष्टों को
तुममें है प्रभु पूर्ण निस्वार्थ॥ — रख के...
जब तुम अपने स्तोता को देने को आ जाते हो,
खुल जाते हैं उसके भाग्य
तब कोई कितना भी रोके, या फिर वो बाधा डाले,
उसका ना टूटे प्रभु विश्वास
ना ही राज्याधिकारी, ना ही प्राण इन्द्रियाँ सारी
उन्मार्गगामी हो कर, ना मार सकती ठोकर
क्योंकि प्रशस्त है प्रभु मार्ग॥ — रख के...
ईश्वर का सच्चा साधक, समय भी ना उसका बाधक
मिलतीं उपलब्धियाँ बड़ी बड़ी
अल्प समय में उसको, प्रेम भरा परमेश्वर देता बिन माँगे यश रयि
हे हृदय मन्दिर के देव! श्रद्धाप्रापक एकमेव
श्रद्धा है तुम पे अविचल, कर दो पुरुषार्थ सफल
तेरे चरणों में रख दिया एकार्थ॥ — रख के...

(प्रपन्न) *शरणगत।* ***(अभीष्ट)*** *चाहा हुआ।* ***(उन्मार्गगामी)*** *बुरा मार्ग, कुपथ।* ***(प्रशस्त)*** *प्रशंसनीय, अतिश्रेष्ठ।* ***(एकार्थ)*** *एक ही अर्थ का।*

53. उठ!

सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्याः सीद।
भासाऽन्तरिक्षमा पृण ज्योतिषा दिवमुत्तभान तेजसा दिश उद्दृꣳहे॥

यजु. १७/२

806-तर्ज : *प्रियनी कुरन्नी इल्ली, विरूदे विरन्नी अल्ली-1393*

हे जीव! तू जाने ना खुद को, तू सुपर्ण है गरुत्मान है
तेरी उड़ान है अति सुन्दर, तेरा द्युः तलक उत्थान है

उन्नति हेतु लिया है जन्म तुझमें युक्त हैं शुभ लक्षण
आत्मा तेरी है सदा गुरु गौरव युक्त हैं तेरे प्राण
हे जीव!...

पुरुष है तू सम्पूर्ण धरा का, उठ जा तू भूतल पे बैठ
अन्तरिक्ष को निज दीप्ति से, आत्म ज्योति से कर दे लैस
हे जीव!...

सत्पुरुषों का है द्युलोक ये, जिनकी दिव्यता है तुझमें
आत्म ज्योति से दिव्य ज्योति को तू चमका निज तेजस् से
हे जीव!...

तेरी साधना और तेजस्विता हो विस्तारित दिग्दिगन्त
लेते हुए हर मानव को संग उन्हें कर दे दृढ़ उत्तंग
हे जीव!...

तू अग्नि है पूर्ण प्रदीप्त है अपनी चमक सबमें चमका
तू सुपर्ण है गरुत्मान है बन राजा तू प्रजा को उठा॥
हे जीव!...

---

*(**सुपर्ण**) अच्छे या समर्थ पंखों वाला। (**अनवधि**) असीम। (**उत्तंग**) बहुत ऊँचा। (**गरुत्मान**) गुरु आत्मा वाला।*

54. तेरी इच्छा

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि।
युधेदापित्वमिच्छसे॥ *ऋ. ८.२१.१३ अथ. २०.११४.१*

743 तर्जः *प्रिय सखी ऐविड़िनी-प्रणयिनी-711*
(राग-तिलक कामोद)

अधिपति अनुभवी
प्रिय प्रभो! अति सुधी!
हो तुम सनातन परमानन्द
बन्धुरहित प्रतिनिधी
अनवधि हो ऽ ऽ ऽ
नेता नियन्ता सतत् से
हो इन्द्र रक्षक जगत के
सबके, प्रीतम, इन्द्रेश! इन्द्रेश! अधिपति....

सा ऽ ऽ रेसा ऩीसा रेगमप धप मगरे
रेग मप रेऽ परे मऽऽ गमग मऽ रे सा नी सा

ना तेरा है कोई बन्धु, ना ही शत्रु कोय
फिर भी हम बन्धुत्व तेरा ना कभी भी खोय
हो प्रभु निर्लिप्त फिर भी, चाहते हो बन्धुत्व
लड़ता जो बन्धुत्व-युद्ध बनता वो ही प्रवण॥ अधिपति....

रोग दुःख दरिद्र पीड़ा सतत् उत्पन्न होय
समझ में आने लगा है, यही पाप को धोय
उलझनों कठिनाईयों को भी पार करके हम
करें तेरे इस बन्धुत्व का पूर्ण रसास्वादन
इस तरह तेरा प्रेम पाकर पायें परमानन्द अधिपति...

जो भी आज है दूर तुझसे, या तेरा द्वेषी
युद्ध करे बन्धुत्व का यदि वो बन सकता ऋषि
कमर कस के खड़ा हूँ पाना है प्रभु तेरा संग
जितनी बार जन्म मैं लूँगा रहूँगा तेरा बन
प्रार्थना हैं 'इन्द्र' तुझसे जानो मेरी तड़पन

---

*(**प्रणव**) उदार, विनीत। (**निर्लिप्त**) जो किसी भी विषय में लिप्त न हो। (**अनवधि**) असीम।*

55. कवियों का गीत

परि कोशं मधुश्चुतमव्यये वारे अर्षति। अभि वाणी ऋषीणां सप्त नूषत॥

साम. ५७७ ऋ. ९. १०३. ३

625 तर्जः ***प्रिय सखी ऐवीड़िनी प्रणयीनी, अरियुमो, 711***

(राग-तिलक कामोद)

अनुस्मृति अनुकृति अनुशयी अनुनयी
बन जाये आत्मा, भक्ति रस से करें तेरी स्तुति (2)
तुझे पाने के उद्देश्य से प्रभु सत्यकर्म सदा करें
भगवन्, हर समय गाये तव कीर्ति

सा ऽ नीसा नीसा रेगमप धपमगरे रे ग म प नी प रे म ऽ
नी प रे म ग सा रे ऩी सा

अब हमारे श्वास श्वास, मन के हैं मनके
मनोमय विज्ञानमय बनें कोष प्रपन्न से
कृपा हुई अनुभूत तेरी हुआ मैं तुझमें आसन्न।
पाया आत्म प्रसाद तुझसे हुआ मैं प्रेम-प्रगम
आनन्दमय कोष तक, पहुँचा दिया भगवन्॥

॥अनुस्मृति॥

अब तुम्हारी कृपा दे रही है जीवन प्रतिक्षण
आ रहा है अब तेरी स्तुतियों में भी आनन्द
इन्द्रियाँ ऋषि बन गई हैं, पल्लवित अङ्ग-अङ्ग
कर रही हैं सत्कार जगा प्रेम-प्रसंग
वाणी रूप बना हर इक अङ्ग, गाते गीत भजन

॥अनुस्मृति॥

वास्तविक रस पा लिया सार्थक हुआ जीवन
सप्त ऋषियों को दिया प्रभु ने पूर्णानन्द
तेरी संजीवनी से पाया सच्चा संजीवन

आत्मदर्शी मेरी इन्द्रियाँ हो गईं पावन
अब वो हैं परमात्मदर्शी जिसमें परमानन्द

॥अनुस्मृति॥

मस्त होके इन्द्रियाँ हो गई हैं गानमय
मूक वाणी में जगा प्रभु तेरा प्रेम-प्रणय
जड़ परमाणु पिण्ड भी हो तो गये चेतन
आचरण करके आलौकिक हो गये प्रतिपन्न
हो गया जीवन, लम्बी सन्ध्या का कीर्तन॥

॥अनुस्मृति॥

---

*(**संजीवनी**) अमृत। (**संजीवन**) साथ साथ रहना। (**अनुस्मृति**) सब ओर से ध्यान हटा केवल एकाकी में ध्यान। (**अनुकृति**) अनुरूपता। (**अनुनयी**) विनम्रता, शालीनता। (**प्रपन्न**) याचक, शरणागत, प्रार्थी। (**अनुशयी**) पश्चाताप करने वाली। (**प्रतिपन्न**) पूर्ण जाना हुआ। (**मनके**) माला के दाने। (**प्रगम**) प्रेम प्रगति का प्रथम पग। (**पंचकोष**) अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय। (**आसन्न**) निकट, उपागत। (**प्रसंग**) घनिष्ठ संबंध। (**प्रणय**) प्रीतियुक्त प्रार्थना।*

56. पाप के छः कारण

न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः मा सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः।
अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता॥

ऋ. ७.८६.६

898 तर्जः *प्रिया आज आले 1444*

प्रभु मेरे हृदय में समा जा
प्रेम से हूँ गद्गद दर्श प्यासा
प्रकाशित है तेरी प्रतिभा
जग सारा तेरी कविता
मेरे पाप के छः कारण, करते रहते हैं दुःखी (2)
चाहिये मुझे तेरा बल जिसकी मुझमें है कमी (2)
अनन्य गुणों का पय पिला, मार्ग प्रशस्त ही दिखा...होऽ ऽ ऽ

॥प्रभु मेरे॥

आदतें बुरे कामों की मिटा दे मेरे प्रभुवर (2)
धुति छोड़ आत्म निरिक्षण करा देना सत्वर (2)
पाप से हे नाथ! दे बचा, मन में करे ना घर व्यथा ॥होऽ ऽ ऽ
॥प्रभु मेरे॥

मूल पाप का है अचित्ति, अज्ञान मन का बढ़ाये (2)
परिणाम हानिकारक जीवन को सताये (2)
प्रभु मेरे ज्ञान को बढ़ा, वस्तुस्थिति सच्ची समझा ॥होऽ ऽ ऽ
॥प्रभु मेरे॥

निद्रा में सोया हुआ मन भी अलसाये (2)
स्वप्न की तरह ये संचित ज्ञान मुरझाये (2)
सतर्क-निपुणता को प्रभा देता है आलस को दबा॥होऽ ऽ ऽ
॥प्रभु मेरे॥

क्रोध से विचार की शक्ति देती है दगा (2)
क्रोध क्रोधी को कर देता मन से अन्धा (2)
ईर्ष्या शोक लोभ का बँधा, क्रोधी रहता पापों से सटा॥होऽ ऽ ऽ
॥प्रभु मेरे॥

सुरा का शराबी मादकता में ही बौराये(2)
गाँजा भाँग तमाखू खाकर बौधिक स्तर गिराये (2)
बुद्धि नाश करती है सुरा, मादक द्रव्य है बुरा॥होऽ ऽ ऽ
॥प्रभु मेरे॥

विभिदक-कमाई देती पाप को जगा (2)
जुए के पासों ने दिए कई घर डुबा
दूजे की कमाई का ठगा धन, पाप को देता बढ़ा॥ ॥होऽ ऽ ऽ
॥प्रभु मेरे॥

---

*(**धुति**) बुरे कामों की आदत। (**सत्वर**) तुरन्त। (**अचित्ति**) नासमझी। (**संचित**) प्राप्ति, इकट्ठा करना। (**विभिदक**) जुआ।*

57. भगवान के दान की निन्दा मत करो

मा नि॑न्दत॒ य इ॒मां मह्यं॑ रा॒तिं दे॒वो द॒दौ मर्त्या॑य स्व॒धावा॑न्।
पाका॑य॒ गृत्सो॑ अ॒मृत॒ो विचे॑ता वैश्वा॒न॒रो नृत॑मो य॒ह्वो अ॒ग्निः॥

ऋ. ४.५.२

301 तर्जः *प्रिया आज आले–1444*

किसके लिये है ये सारा जहान, दान प्रभु का है निष्काम
उपकार कैसा है महान!
॥किसके लिए॥

किसी उपकार के बदले, नहीं दी है सृष्टि(2)
कोई ना अपेक्षा रखे, रखे कृपा दृष्टि(2)
पोषक वो पालक शक्तिमान, शत शत प्रभु को है प्रणाम!
॥किसके लिए॥

मूर्ख, विद्वान, हो निर्बल या अधम या पापी, (2)
प्रजा, राजा धनी दरिद्र हो बली या घाती, (2)
प्रभु सबके रक्षक सब के प्राण, शत शत प्रभु को है प्रणाम!
॥किसके लिए॥

रचित सृष्टि का प्रयोजन जीव बढ़े आगे, (2)
उन्नति प्रयत्न करे तो सौभाग्य जागे, (2)
अग्निरूप अग्रणी भगवान, शत शत प्रभु को है प्रणाम!
॥किसके लिए॥

मरणधर्मा हूँ जाने कब दुनियाँ से जाऊँ (2)
पर तुझको तो अमृतमय अविनाशी पाऊँ (2)
जाने कब करा दे अमृतपान, शत शत प्रभु को है प्रणाम!
॥किसके लिए॥

अपक्व जीवन के कारण अशुद्ध बना हूँ (2)
तेरा दान पाये बिना प्रबुद्ध कहाँ हूँ? (2)
तेरे दान में है कल्याण, शत शत प्रभु को है प्रणाम!
॥किसके लिए॥

पिताओं में श्रेष्ठ पिता हैं, भाईयों का भाई (2)
जितने भी रिश्ते, सबमें दाता दे दिखाई (2)
वैश्वानर है वो महान, शत शत प्रभु को है प्रणाम!
॥किसके लिए॥

सर्वहितकारी गुरु वो देता विविध दान (2)
दान के निन्दक तो है कृतघ्न या नादान (2)
बात उनकी पे ना दूँ कान, शत शत प्रभु को है प्रणाम!
॥किसके लिए॥

बिना मूल्य के आजीवन, प्रभु देता रहता दान (2)
दान की करो ना निन्दा सदा करो सम्मान (2)
स्तुति करो तुम अविराम, शत शत प्रभु को है प्रणाम!
॥किसके लिए॥

---

*(**अधम**) नीच। (**अग्रणी**) आगे ले जाने वाला। (**घाती**) मारने वाला। (**वैश्वानर**) सब मनुष्यों का हितैषी। (**अपक्व**) कच्चा। (**प्रबुद्ध**) ज्ञानी।*

58. उसकी सब प्रशंसा करते हैं

विश्पतिं यह्वमतिथिं नरः सदा यन्तारं धीनामुशिजं च बाधताम्।
अध्वराणां चेतनं जातवेदसं प्र शंसन्ति नमसा जूतिभिर्वृधे ॥8॥ *साम. १७२०*

262 तर्जः *प्रिया आज माझी नसे साथ धाया 306*

चलो मिलके हितकर्ता के गीत गायें।
वो हैं 'वैश्वानर' जो उन्नत कराये॥ ॥चलो॥

वो है जातवेदा, वो सर्वन्तर्यामी (2)
वो सर्वज्ञ है सबका एकमात्र स्वामी (2)
श्रद्धा प्रणति के भाव मन में जगायें ॥चलो॥

स्तुतिगान के संग क्रिया भी आवश्यक (2)
धरें हाथ पर हाथ तो जीवन अकारथ (2)
गतिशीलता का सङ्कल्प बनायें ॥चलो॥

जो विश्वापति है प्रजाओं का स्वामी (2)
अधीश्वर है वो ही जगत का विधानी (2)
भक्तों को सन्मार्ग पे विधिवत चलाये ॥चलो॥

दिशा, बुद्धि कर्म की, जिनकी सही है (2)
तो अवरोध जीवन में उनके नहीं है (2)
जगत में वो मानवता शान्ति फैलाये ॥चलो॥

जो मानव सेवायज्ञ का बने ऋत्विज (2)
अहिंसा के भाव जगे जिसके सात्विक (2)
हिंसा और प्रभु-प्रीत मेल ना खायें ॥चलो॥

है आपसे प्रेम, प्रभु-प्रेम-द्योतक (2)
ये सब प्रेमी पहुँचेंगे प्रभु-प्रेम-लौ तक (2)
इन्हीं सद्गुणों से विभूषित हो जायें॥ ॥चलो॥

---

*(**वैश्वानर**) सब नरों को आगे ले जाने वाला। (**जातवेदा**) उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान और जानने हारा। (**सर्वज्ञ**) सब कुछ जानने वाला। (**अकारथ**) व्यर्थ। (**विधानी**) प्रबन्ध करने वाला, व्यवस्थापक, व्यवस्था करने वाला। (**ऋत्विक**) नेता। (**द्योतक**) बतलाने वाला, प्रकाशक। (**विभूषित**) अलंकृत। (**लौ**) दीपक-बाती से उठती आग। (**अवरोध**) रुकावट। (**विधिवत**) ठीक प्रकार से।*

59. आग को आग समझो

अग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः। अग्निमीधे विविस्वभिः॥

ऋ. ८.१०२.२२

699-तर्जः *प्रीती की भूमि तेल्लीदे पिरिदूल्लू जाग मिल्लदे–2706*

कर्म तो मानव करे, कर्म में अग्नि जले,
अग्नि जलाते हुए, यज्ञ के भाव रहें॥
जीवन शक्ति, यज्ञ में अर्पित हो
धन जन मन कहीं भी वैभव हो
यज्ञ अग्नि का ग्रहण यज्ञ के कर्म के स्तर तक होवे॥

॥कर्म तो मानव

ब्रह्माण्ड में व्यापक हो रहा यज्ञ
उसकी एक चिंगारी में चमके कृत्य
यज्ञ की इन, चिंगारियों को
किये पुनः यज्ञार्पण बने उरु
यज्ञ-संकल्प करे, जीवन करे गरु
हव्य देवों का है, द्विबन्धु॥

॥कर्म तो मानव

आग जलाई किन्तु यज्ञ-बुद्धि
पैदा ना कि तो अग्निदोष यहीं
अग्नि का लक्षण जान लेगा जो
यज्ञ के गुण धारण करेगा कई
फलेगा यज्ञ कल्पतरु॥

॥कर्म तो मानव

आग जलानी है, हे अग्निदेव!
होके उपास्य हमारे, खूब जलो
आग को आग समझें, ना समझें राख
अनुभव प्रदीप्त हृदय का, पैदा करो
जीवन की, मेरी ज्योतियाँ श्रेय
भेंट करुँ तुझे हे अग्निदेव!

॥कर्म तो मानव

---

*(**कृत्य**) कर्म। (**उरु**) अधिक मूल्यवान। (**गरु**) प्रतिष्ठित, यशस्वी। (**हव्य**) आहुति, अन्न। (**द्विबन्धु**) अग्नि, दो लोकों वाला बन्धु। (**यज्ञ-हितु**) यज्ञ द्वारा हित करने वाला। (**कल्पतरु**) मुँह माँगी वस्तु देने वाला। (**उपास्य**) पूजा के योग्य। (**श्रेय**) कल्याण कारक।*

60. द्वेष से दूर

त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडो अव यासिसीष्ठाः।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाँसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्॥

ऋ. ४.१.४ यजु. २१/३

390 तर्जः *प्रेमा ने पंख दिले प्रेम पांखरा 1465*

अपमान देवों का करना है बुरा।
उनके नियमों की न कर अपूजा॥ ॥उनके॥

छुटकारा पाना है दुःख से आखिर
जानबूझ पाप बन्धन में ना तू गिर
राग द्वेष का मानव, रहे अधूरा॥ (2) ॥उनके॥

देव प्रकृति के या फिर मनुष्य
हैं शिव नियम से आवृत करते सुकृत्य
होती है देवों में गहन-गूढ़ता॥ (2) ॥उनके॥

धर्म-मर्यादा का ना कर उल्लंघन
पाये न जिससे दुःख-व्याधि-बन्धन
पापघ्न वरुण कर दया कर कृपा (2) ॥उनके॥

वरुण तेरे क्रोध के ना बने भाजन
यजनीय कर्मों का करते रहे पालन
कौन तुझसे बढ़के है याज्ञिक बड़ा? (2) ॥उनके॥

हे दयालु यज्ञ भाव हममें भी भर दो
और राग द्वेष रहित सुभाव कर दो
प्रेम से परिपूर्ण कर दो जिया॥ (2) ॥उनके॥

पा के तुझसे शक्ति तर गये अनेकों
श्रेष्ठ गुण वाहक शुभगुण हमें दो
द्वेष रहित कर दो अग्ने, त्वरा॥ ॥उनके॥

हे अग्ने! हे वरुण! हे शोशुचान!
द्वेश क्रोध हिंसा का कर दो निदान
जाज्वल्य तेज से राख हो अपा॥

---

*(**अपूजा**) सेवा न करना। (**गहन गूढ़ता**) गहरे छिपे भाव। (**आवृत्त**) घिरा हुआ, व्यापक। (**पापघ्न**) पापों से मारने वाला। (**जिया**) हृदय। (**निदान**) अन्त। (**सुकृत्य**) शुभकार्य। (**भाजन**) पात्र। (**त्वरा**) तुरन्त, शीघ्र। (**अपा**) घमंड। (**शोशुचान**) अत्यंत प्रदीप्त। (**जाज्वल्य**) धधकता हुआ।*

61. देवदूत

अ॒ग्निं दू॒तं वृ॑णीमहे॒ होता॑रं वि॒श्वेद॑सम्। अ॒स्य य॒ज्ञस्य॑ सु॒क्रतु॑म्॥

साम ३. ऋ.१.१२.१

714 तर्जः *प्रेमास में निननिन्जले पूवाग चोकुम्न दिंदे-2707*

जब से मेरे, हितू-हृदय में, जागृत हुई यज्ञ-अग्नि
मुझको सुनाई, देने लगा, दिव्य सन्देश ऊर्जस्वी
मुझे अग्निदेव, आह्वान से, देव-संदेश, दे रहा निजि॥

॥जब से मेरे॥

शक्तियाँ,खेल रहीं विश्व के मञ्जुल मंच पर, रही हैं बुला,
देह की, मन और आत्मा की, अग्नि को दूत बना, कहतीं हैं तू आ,
विश्व-याग की आग, देवदूत बनकर, देह आत्मा मन में, हुईं प्रादूर्भूत,
ये आग है विश्ववेदा॥

॥जब से मेरे॥

विश्व की, विधिबद्ध ये सत्ता, आग के द्वारा ही, है विद्यमान,
विश्व की, सत्ता का ये आधार, है मुझमें भी वर्तमान
अपनी सत्ता को, विश्व की सत्ता में करना विसर्जन हे यज्ञकाम!
ये आग है विश्ववेदा॥

॥जब से मेरे॥

सब शाकल्य पड़कर ज्वाला में रहता है सुरक्षित, यही है विधान
यज्ञ का चिन्तन मनन निदिध्यासन हो आग्नेय, हे संकल्पवान।
आदि हो अग्नि अन्त हो अग्नि, संकल्प हो अग्नि, अनुष्ठान हो अग्नि
ये आग है विश्ववेदा॥

॥जब से मेरे॥

(हे) विश्वयाग! मेरे जीवन के, यज्ञ का होता बन, कर दे निष्काम
तेरा अदन, अद्‌भुत दान है, और ये अदन तेरा, बन जाता दान तुझे
हव्य देकर, चिन्ता न रहती, क्योंकि ये आहूतियाँ नष्ट ना होतीं
ये आग है विश्ववेदा॥

॥जब से मेरे॥

---

*(**ऊर्जस्वी**) अति बलवान, तेजस्वी। (**निजि**) शुद्धियुक्त। (**मञ्जुल**) मनोहर, सुन्दर। (**प्रादुर्भूत**) प्रकट हुआ हुआ। (**विश्ववेदा**) विश्व का जानकार। (**शाकल्य**) हवन की सामग्री (**अदन**) खाने योग्य पदार्थ।*

62. त्याग पूर्वक भोग

यस्यास्त आसनि घोरे जुहोम्येषां बद्धानाभवसर्जनाय कम्।
भूमिरिति त्वाभिप्रमन्वते जना निर्ऋतिरिति त्वाहं परि वेद सर्वतः॥

अथर्व. ६.४८.१ यजु. १२/६४

291 तर्जः *फुलले रो क्षण माझे फुलले रे-2533*

निर्ऋते रे, हे माते निर्ऋते रे! (2)
जगती के स्थूल देवते! (2)
मानव को भोगों में दिखता है आनन्द, सुख की प्रतीति
खाना पीना सन्तति की उत्पत्ति है इच्छायें जी की
आसक्ति में होते केवल जनम जनम के फेरे॥ ॥निर्ऋते रे॥

स्थूल जगत में फँसके ना तो मिली है तृप्ति ना ही मोक्ष
या तो फँसा या बँधा जो है आखिर खुद का है दोष
इन देहों के भोगों में ही छाते रहे हैं ये अन्धेरे॥ ॥निर्ऋते रे॥

ज्यों ज्यों जकड़ता गया स्थूल देहों में इन स्थूल भोगों में
त्यों-त्यों परिमित हुई शक्तियाँ घेरा इन कष्ट रोगों ने
पशुओं जैसे सुलभ भोगों को मस्ती में भोगे रे॥ ॥निर्ऋते रे॥

रे निऋते ज्ञान, शक्ति की कमी, देखो मैं घबरा गया हूँ
बन्धन रहित अवस्था को भी मैं निज आत्मा से समझ रहा हूँ
आनन्द भरे, शांत, सुखों के सुदिन तो आते ही जायें मेरे॥ ॥निर्ऋते रे॥

उत्तम से उत्तम ज्ञान की चाह जगी है मेरे हृदय में
प्रशस्त भावना विस्तृत कर्म करता रहूँ हर समय में
संयम बल से धैर्य सी स्थिर ज्योत जागे हृदय में मेरे॥ ॥निर्ऋते रे॥

हे निऋते त्यागमय भोग बन्धन को हवि मैं दे रहा हूँ
तेरे समर्पित भावों को मैं अपनी बुद्धि में ले रहा हूँ।
देते तो, न जग के ये भोग, जीवन में सुख शान्ति आनन्द की सतत लहरें॥
॥निर्ऋते रे॥

---

*(**निर्ऋते**) भूमि देवी (माता)। (**सन्तति**) सन्तान। (**प्रशस्त**) श्रेष्ठ, उत्तम, प्रशंसनीय। (**स्थूल**) जड़। (**प्रतीति**) आभास। (**सन्तति**) सन्तान। (**सुलभ**) आसानी से। (**सुदिन**) श्रेष्ठ दिन। (**प्रशस्त**) श्रेष्ठ उत्तम, प्रशंसनीय। (**विस्तृत**) विस्तार वाला। (**धैर्य**) धीरज।*

63. प्रभो तेरी कृपा का एक कण

दिवो नु मां बृहतो अन्तरिक्षादपां स्तोको अभ्यऽपप्तद्रसेन।
समिन्द्रियेण पयसाहमग्ने छान्दोभिर्यज्ञैः सुकृतां कृतेन॥ *अथ. ६.१२४.१*

297 तर्जः *बघत राहू दे तुझ्या कड़े-1073*

श्रेष्ठ मार्ग की मति तू दे, तुच्छ कामनाओं से घिरे (2)
पूर्ण हुई ना कभी कामना एक मिटी दूजी का सामना॥
तृष्णायें ना कभी मिटें॥ ॥श्रेष्ठ मार्ग॥

तुम विशाल जलनिधी अनन्त हो
प्यासे भक्तों के सुखंद हो
एक बूंद से तृप्त करे (2) ॥श्रेष्ठ मार्ग॥

श्रेष्ठ तुष्टियो के प्रभु हर्षक (2)
ज्ञान सरस रस के हैं वर्षक (2)
निर्झर आनन्द वृष्टि करे (2) ॥श्रेष्ठ मार्ग॥

क्या महत्व है इच्छाओं का?
कर अनुभव प्रभु-भिक्षाओं का
प्रभु-प्रीत अमृत बरसे (2) ॥श्रेष्ठ मार्ग॥

दिव्य ज्ञानमय बृहद् आकाश से
ज्ञान बिन्दुओं के बहाव से
प्रभु आत्मा संसिक्त करे (2) ॥श्रेष्ठ मार्ग॥

रसमय शक्ति कणों के द्वारा
आत्म शक्ति को मिले सहारा
ईश्वर सुख संवृद्ध करे (2) ॥श्रेष्ठ मार्ग॥

आत्मत्याग सुकर्म जगाये
याज्ञिक सच्चा वो कहलाये
आत्मा प्रतिविशिष्ट करे (2) ॥श्रेष्ठ मार्ग॥

---

*(**जलनिधी**) समुद्र। (**सुखद**) सुख देने वाला। (**तुष्टि**) संतोष। (**ज्ञानद**) ज्ञान देने वाला। (**बृहद**) विशाल, बड़ा। (**संसिक्त**) अच्छी तरह सींचा। (**संवृद्ध**) बढ़ा हुआ। (**प्रतिविशिष्ट**) उत्कृष्ट, सबसे अच्छा। (**याज्ञिक**) यज्ञ करने वाला।*

64. सच्चे यश की नाव

१ २ ३१२ ३ १ २ ३ १ २
आ नो अग्ने वयोवृद्धꣳरयिं पावक शꣳस्यम्।
१ २ ३ २ ३ १३२ १२
रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहꣳसुनीती सुयशस्तरम्॥9॥ *साम. ४३*

698 तर्जः *बड़किनिंदा मनविल्ला पन्ना 670*

आओ खेल खेला जाए धन का
खेलेगा वो क्या जिसको चिन्ता, धन चोर की,
वसुधन की परिचर्या, जीवन को करे बढ़िया(2)
कोई ईश के धन को चुरा न सके।
याज्ञिक धन में है श्रद्धा अति आनन्दता।
वसुधन धन की परिचर्या, जीवन को करे बढ़िया॥
ध सा नी सा नी म रे सा, रे म प, रे म नी ध प, म प नी
प नी सा, रे सा रे सा रे रे रे रे
है प्रशस्त वही धन यज्ञाग्नि से मिलते
वो पवित्र धन है जिसमें यज्ञकर्म चलते
दोष रहित धन मिलता यज्ञ में
यज्ञशेष के रूप का धन चमके
ऐसे धन से आयु-शक्ति बढ़ी
बुद्धि सधी तो छूटी धोखाधड़ी॥ ॥वसुधन की॥

प्राप्ति और वितरण में, यज्ञ-समिध हो धन
ये दोनों ही बनते हैं, यश वैभव का कारण
लोग ना करते यशी से वैर द्वेष
प्रेम का पात्र वो बनते याज्ञिक देव
शुभकामनाओं की तरणी से
पहुँचें उस द्युलोक की ऊर्मि॥ ॥वसुधन की॥

इस विमान की कामना किसे नहीं होती?
एक को देख के अन्यों को प्रेरणायें होतीं
इस विमान निर्माण में अग्नि देव
अग्रणी हो जाते हैं स्वयमेव
बाढ़ आ जाए सब यज्ञों की
हृष्ट पुष्टता होवे लोगों की॥ ॥वसुधन की॥

(परिचर्या) *सेवा, टहल।* ***(तरणी)*** *तारने का साधन, नाव।* ***(समिध)*** *अर्पण।* ***(ऊर्मि)*** *प्रकाश।* ***(विमान)*** *द्युःलोक के यात्री का उड़न-साधन (मोक्ष की ओर)।*

65. सर्वद्रष्टा-सर्वशक्तिमान

य एक इत्तमु ष्टुहि कुष्टीनां विचर्षणिः। पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः।

ऋ. १.४५.१६

466 तर्जः *बरद नीलु निन्न हेतरा-1335*

हे मानव! किस किस की करता फिरता है स्तुति?
स्तुत्य जनक रक्षक पालक एक है विश्वापति॥
॥हे मानव॥

तू जाने हर किसी को समझ बैठा अपना पालक (2)
करने लग जाता है स्तुति, जो दीखता धन का धनी॥
॥हे मानव॥

तू समझता लब्ध प्रतिष्ठ रोब वाले को स्वामी (2)
गीत स्तुति के गाने लगता, देख दार्शनिक या कवि॥
॥हे मानव॥

जीवित या निर्जीव आकृति पर है तेरी जीविताशा (2)
मोहित सौन्दर्यों में आबन्ध क्यों, है तेरी आवृत्ति॥
॥हे मानव॥

ऐन्द्रियक विषयों की स्तुतियों से हुआ मानव मृदित। (2)
और जो हैं अज्ञानी लोग जागृत करते ना मति।
॥हे मानव॥

कुछ हैं रक्षक ज्ञानी ध्यानी आनन्दी आर्यक-आत्मज्ञ (2)
पर विचर्षणि, वृषक्रतु गुण कर्म स्वभाव वाले कति?
॥हे मानव॥

एक ही केवल प्रभु है स्तुत्य वस्तुओं के हैं स्त्रोत(2)
छोड़ स्तुतियाँ सैकड़ों की कर स्तुति बस ईश की॥
॥हे मानव॥

सांसारिक सुख में जाग जाते हैं छल-छिद्र (2)
महासूर्य के सामने हैं विषयी-किरणें क्षुद्र ही॥
॥हे मानव॥

क्षुद्र ज्ञान व बल मनुष्य का पारक-पालन क्या करे?
पर है इन्द्र विचर्षणि है वृषक्रतु पालक पति।
॥हे मानव॥

सर्वदृष्टा दृंहित-दृष्टि दीन बन्धु की है दिव्य (2)
सब यही जाने कि ईश्वर बिन नहीं मिलती गति॥
॥हे मानव॥

कर्म दृढ़ संकल्प 'इन्द्र का' एक सोच में है सफल (2)
फिर से उसको सोचने की ना जरूरत है कभी ॥
॥हे मानव॥

हार्दिक स्तुतियाँ हमारी, हंस की हेतुक बनें (2)
एक ही महासूर्य है मधवन, मधुर मन से करें स्तुति॥
॥हे मानव॥

---

*(**लब्ध प्रतिष्ठ**) प्रतिष्ठा पाया हुआ। (**दार्शनिक**) दर्शन शास्त्रों से परिचित। (**जीविताशा**) जीने की उम्मीद। (**आबन्ध**) प्रदर्शन करना। (**मृदित**) मसल दिया गया। (**आर्यक-आत्मज्ञ**) आदरणीय पुरुष। (**विचर्षणि**) सर्वदृष्टा। (**वृषकृतु**) सर्वशक्तिमान। (**कति**) कहाँ। (**आरक्ष**) रक्षक। (**क्षुद्र**) अधम, नीच। (**पारक**) उद्धारक। (**दृंहित-दृष्टि**) विकसित अवलोकन। (**हेतुक**) उपकरण। (**मधवन**) इन्द्र। (**महासूर्य**) प्रकाशक परमात्मा। (**आवृत्ति**) एक ही काम करना, दोहराना। (**छल छिद्र**) धूर्त्तता।*

66. जो तुम्हारे भले के लिए देता है वह अपना घर बनाता है

प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति।
प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्पर्यरिष्टः सर्व एधते॥

ऋ. ५.२७.१६

509 तर्जः *बाई मी विकत घेतला श्याम–1770*

देखो भाई कितना देते प्रभु दान (2)
सृष्टि है इसका प्रमाण ॥देखो भाई॥

जीवन रक्षण साधन सूच
अन्न का दान है जिसमें पूज्य
लिया दान, कभी देना होगा
जिसपे लिखा है हरिनाम॥ ॥कितना देते प्रभु॥

पूज्य पदार्थ का देने वाला
विपदा कष्ट को हरता सर्वशः
बना रहा मानो विशाल घर
अपने लिए महान॥ ॥कितना देते प्रभु॥

बनिये सा जो खाये अकेला
उसको कहते सभी भेड़िया
ऐसों को भयमुख खा जाये
रहता है वो अनाम॥ ॥कितना देते प्रभु॥

घर कपड़ा गाड़ी के बिन तो
जीवन यात्रा चल सकती है
अन्न बिना संकट दुर्भिक्ष है
जाते तड़प ये प्राण॥ ॥कितना देते प्रभु॥

अन्नदान तो बड़ा धर्म है
इसमें तो वृद्धि का फल है।
गृहस्थ का वृद्धि प्रमाण तो
है धन-धान्य-संतान॥ ॥कितना देते प्रभु॥

---

*(**सूच**) पवित्र, पावन। (**सर्वश**) पूर्णतः। (**अनाम**) अप्रसिद्ध। (**दुर्भिक्ष**) अकाल।*

67. भेंट का अभाव

१ २३ १२३२३ १ २ २१ २ २ १ २१ ३ १ २ १ १ २

प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उच्यते । भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते॥

साम. ५७३. ऋ.९.१०३.१

749 तर्जः *बाँध प्रीत-फूल डोर मन लेके...1805*

दया दृष्टि मेरी ओर,
कर, प्रभु चित्तचोर, दूर जाना ना (३)
ना ही कोई दूजा ठोर,
जिसपे करुँ मैं गौर, दूर जाना ना (3)

॥दया दृष्टि...

मन की किवड़िया दी है, प्रभु तेरे लिए खोल
प्रीत से पधारो प्रभु! मीत मेरे अनमोल
भूल जाना ना, भूल जाना ना
भूल जाना ना, भूल जाना ना ॥

॥दया दृष्टि...

हृदय रहा मेरा बोल, तरंगों में आ के डोल
आत्म-चित्त मन-वाणी से, रस ओ३मामृत घोल
आके, जाना ना, आके जाना ना
आके जाना ना, आके जाना ना

॥दया दृष्टि...

जगत में जो भी देखा, सब तेरा दयानिधे!
एक आत्मा ही है जो, करुँ अर्पण तुझे,
दरस दीवाना, मैं दरस दीवाना
दरस दीवाना, मैं दरस दीवाना॥

॥दया दृष्टि...

ग म ग रे सा ध नी रे सा नाही कोई ...
ग म म नी ध नी सा
ध नी रे सा, सा नी ध प म ग
मग रे सा ध नी रे सा

68. सरस यज्ञ

पुनान : सोम जागृविरव्यो वारे परि प्रियः
त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तमो मध्वा यज्ञं मिमिक्ष नः ॥

साम. ५१६ ऋ. ६.१०७.६

725 तर्जः *बाँसुरी श्रुति पोले निन स्वरम केल्के उरु 2429*

जागृति मेरी जब से उद्भव हो रही, हुए दूर पाप-नष्टकारी
मेरी देह पुरी भी, बनी है निवास जीवन का, जो है सान्द्रकारी॥
वाह जागृति! वाह जागृति! ॥

॥जागृति मेरी॥

तेरी सत्ता की है अङ्ग-अङ्ग में अनुभूति आठों पहर हैं रोमाञ्च में हम
रोवें खड़े होते ये सोचते ही के अन्दर है प्यारा हमारा आत्मन्
वाह जागृति! वाह जागृति! ॥

॥जागृति मेरी॥

नस नस में लहरें प्यार की दौड़ें वर्णन करुँ क्या-क्या अनूभूतियों का
देवपुरी के देवों का आनन्द, है कारण तुम्हारी अनुनीतियों का
वाह जागृति! वाह जागृति! ॥

॥जागृति मेरी॥

तुझको बता दें, हम, ऐ श्रेष्ठ ब्राह्मण! तुझे देख हम यज्ञ करने लगे
मेरे जीवन-यज्ञ के बनके ब्रह्मा, बीज परोपकारी बो दो इसमें
वाह जागृति! वाह जागृति! ॥

॥जागृति मेरी॥

यज्ञ ना सूखा रहे हमारा, तेरी सत्ता की हो इसमें मिठास
तुम ही हो तो ब्राह्मण हो और ब्रह्मपुत्र हो
हममें जगा दो निज क्रियाकलाप
वाह जागृति! वाह जागृति! ॥

॥जागृति मेरी॥

प्रेम श्रद्धा ज्ञान से भावना से, मेधावी यज्ञ को परिपूर्ण कर दो
बिन आत्मबोध के जीवन था नीरस याजक इन्द्रियों को माङ्गल्य वर दो॥
वाह जागृति! वाह जागृति! ॥

॥जागृति मेरी॥

---

*(**सान्द्रकारी**) स्निग्ध करने वाले सुन्दर बनाने वाले। (**सतर्क**) चौंकन्ना। (**क्रिया कलाप**) कार्य व व्यापार। (**याजक**) यज्ञ करने वाला। (**मांगल्य**) मंगलकारी। (**उद्भव**) वृद्धि बढ़ाना। (**रोवें**) रोंगटे। (**अनुनीति**) सभ्यता, नम्रता।*

69. अनमोल वाणी

मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम।
वाचा वदामि मधुमद्भयासं मधुसंदृशः॥ *अथ. १.३४.३*

435 तर्जः *बोल वीणी बोल 1470*

बोल वाणी बोल, बोल वाणी बोल
परिपूर्ण मीठे वचनों से अपनी वाचा तोल। ॥बोल वाणी॥

स्नेहित हितकारिणी (2)
दोषरहित प्रभावती (2)
निश्चल सत्य भाषिणी
वागीश-वाचा खोल॥ ॥बोल वाणी॥

चिन्तक मननशील अनुशीलित (2)
हार्दिक और होवे अनुनयी (2)
सत्यस्वरूप में खरी॥ (2)
बोले बोल अनमोल॥ ॥बोल वाणी॥

आके निकट, मधुरस भर (2)
सबके रोग कष्ट तू हर (2)
बिछड़ के भी, भर प्रीति (2)
प्रेम की उठे कल्लोल॥ ॥बोल वाणी॥

जिन कार्यों में हो रत (2)
उनमें घोलना तू अमृत (2)
रहना तू मनस्विनी (2)
माँग प्रभु की ओल ॥बोल वाणी॥

हो प्रवेश या निष्कृमण कभी (2)
सभा गृह समिति हो कहीं (2)
रखना वाचा अमी,(2)
अमी सरस रस घोल ॥बोल वाणी॥

---

*(**निष्क्रमण**) घर से बाहर जाना। (**वाचा**) वाणी। (**प्रभावती**) बड़े प्रभावशाली। (**निश्चल**) अटल, न टलने वाली। (**वागीश**) मृदु बोलने वाली। ज्ञानमयी। (**ओल**) गोद, शरण। (**चिन्तक**) सोचने विचारने वाली। (**अनुशीलित**) बारम्बार चिन्तित। (**अनुनयी**) सभ्या विनीत शांत। (**कल्लोल**) बड़ी लहर, आनन्द। (**मनस्विनी**) श्रेष्ठ चिन्तन वाली। (**अमी**) अमृत।*

70. जागते रहो

यो जा॒गार॒ तमृचः॑ कामयन्ते॒ यो जा॒गार॒ तमु॒ सामा॑नि यन्ति।
यो जा॒गा॒र॒ तम॒यं सोम॑ आह॒ तवा॒हमस्मि॑ स॒ख्ये न्यो॑काः॥

ऋ. ५.४४.१४ साउ. ६.२.५ सा. १८२६

256 तर्जः *ब्रह्मनंदी तल्लिन भावे-360*

ब्रह्मानन्दी जाग्रत स्वामी, अग्निरूप कहाये (2)
वो अनिद्र त्रिकाल में जाग्रत स्पर्श ना तमोगुण का है
सारी स्तुतियाँ, सभी ऋचाएँ एक प्रभु को चाहें
यश गानों का स्तुतिगीतों का (2) भाजन बनता जाये।
॥ब्रह्मानन्दी॥

भोगी जग उस अग्निदेव के चरणों में है आश्रित
प्रभु बिन ना किसकी सत्ता है, सब कुछ उसका दायित,
प्रभु-मित्रता में प्रकाश है, (2) प्रभु बिन ठोर ना पायें॥
॥ब्रह्मानन्दी॥

मनुष्य भी यदि जाग्रत होवे, तमोगुण को हटाकर
चैतन्य अतन्द्र हो जाये, आलस्य दूर भगाकर
कर्तव्यों को तत्क्षण कर के (2) अग्निरूप हो जाये।
॥ब्रह्मानन्दी॥

इस अलभ्य सुख-भोग के पीछे, ये सारा जग भागे
भोग्य पदार्थ हाथ बाँधकर खड़े सोम के आगे।
जाग्रत पुरुष इन सब पर (2) अपना प्रभुत्व जमाये।
॥ब्रह्मानन्दी॥

जागो जागो रहो जागृत, तामसिकता को त्यागो
जीवनोदय-अभ्यास करो तुम आलस्यों को भुला दो
जागरुक तो लोक मान्यता मान कीर्ति यश पायें॥
॥ब्रह्मानन्दी॥

---

*(**भजन**) आधार पात्र, बर्तांव। (**अतन्द्र**) सचेत। (**तत्क्षण**) उसी समय। (**जागरुक**) जो जाग्रत अवस्था में न हो। (**अलभ्य**) कठिनाई से प्राप्त होने वाला, दुर्लभ।*

71. प्रभु के गीत गाओ

प्र मंहिष्ठाय गायत ऋतान्वे बृहते शुक्रशोचिषे । उपस्तुतासो अग्नये॥

ऋ. ८.१०३.८

397 तर्जः *ब्रह्मा विष्णु आणि महेश्वर-317A*

आओ मित्रों गायें मिलकर, गायें प्रभु के गीत
जगायें स्वर लहरी में प्रीत (2)

॥आओ मित्रों॥

भक्तिभाव से परमदेव को निज श्रद्धा की भेंट चढ़ायें(2)
शुचि पावक इस दिव्य नाद से कोटि-कोटि मन जीत

॥जगायें स्वर॥

भावभीनी हैं वैदिक गीतियाँ अर्चनीय और हैं वन्दारु (2)
उसकी शरण में बैठ के गायें अमर भक्ति संगीत॥

॥जगायें स्वर॥

सबसे प्रवर महिष्ठ वो दानी, करता सुकृति वो अभिरामी (2)
सद्गुण सत्कर्मों का प्रकाशक, साधक होवें प्रदीप्त॥

॥जगायें स्वर॥

धर्म मिलेगा सुधन मिलेगा ज्योति स्वरूप से तेज मिलेगा।(2)
सत्याचारी सत्यज्ञानी प्रभु करता वेद प्रणीत॥

॥जगायें स्वर॥

गगनचुम्बी महत्ता का अधिपति 'शुक्र शोचि' है उसकी ज्योति(2)
मानस पटल पे यदि पड़ जाये, मानस बने प्रदीप॥

॥जगायें स्वर॥

कालिमा मलिनता नष्ट करे प्रभु, अंतःकरण पवित्र बनाये (2)
अग्रणी प्रभु के स्पर्श से पापी बन जाते अवलीक॥

॥जगायें स्वर॥

सुभग सुपथ के प्रवर प्रणेता, प्राणीमात्र के तुम्हीं प्रचेता (2)
'इन्द्र' की गायें महिमा अनवरत, और बढ़ायें प्रीत॥

॥जगायें स्वर॥

---

*(**वन्दारु**) वन्दन करने योग्य। (**अभिरामी**) मनोहर, मनमोहक। (**प्रवर**) श्रेष्ठ, उत्तम। (**महिष्ठ**) सबसे बड़ा। (**सुकृति**) दया। (**प्रणीत**) आनीत, सामने प्रतिस्थापित। (**शुक्रशोचि**) पवित्र ज्योति वाला। (**अवलीक**) पाप रहित, निष्पाप। (**प्रचेता**) बोधक, चेताने वाला, (वरुण)। (**सुभग**) आनन्ददायक। (**अनवरत**) निरन्तर सतत, हमेशां। (**प्रदीप**) प्रकाशमान, उज्जवल।*

72. श्रद्धा का रहस्य

श्रद्धयाग्नि समिध्यते श्रद्धया हूतये हविः।
श्रद्धंया भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ॥

ऋ.१०.१५१.१

176 तर्जः *भक्तिंच्या फुलांचा डोलतो सुवास 423*

श्रद्धा के फूलों से फैलती सुवास
पावन हृदय का जिसे मिले साथ

॥श्रद्धा के॥

श्रद्धा के श्रेय में शांति का ध्येय (2)
सत्य की ये दृढ़ता तर्क से ही ज्ञेय
उच्च भव्य भावना अन्तः ज्ञात

॥श्रद्धा के॥

श्रद्धा का अर्थ है सत्य का ही धारण (2)
प्रतिक्षेत्र जीवन का सत्य करे क्षालन
श्रद्धा की ये दृढ़भूमि, सत्य का निवास

॥श्रद्धा के॥

श्रद्धा विरहित कर्म में रहे विकल्प(2)
श्रद्धा युक्त कर्मों में बनते संकल्प
ऐ श्रद्धावान! कर सत्य का प्रकाश

॥श्रद्धा के॥

---

*(**अन्तरज्ञात**) हृदय से जाना हुआ। (**क्षालन**) शुद्धता, शुद्ध करने का कार्य। (**विरहित**) रहित, शून्य बिना। (**विकल्प**) विरुद्ध कल्पना। (**संकल्प**) विचार दान-पुण्य या देव कर्म करने का दृढ़ निश्चय करना।*

73. श्रद्धा का रहस्य

प्रि॒यं श्र॑द्धे दद॑तः प्रि॒यं श्र॑द्धे दिदा॑सतः।
प्रि॒यं भो॒जेषु॑ यज्व॑स्वि॒दं म॑ उदि॒तं कृ॑धि॥

ऋ. १०.१५१.२

177 तर्जः *भक्तिच्या फुलांची डोलातो सुवास-423*

श्रद्धावान दानी भलाई का पात्र
श्रद्धा का ये धन भी निर्धन के पास
॥श्रद्धावान॥

यज्ञ करें तो होवे लोकोपकार (2)
पर-क्षुधा हरें, ये भी श्रद्धा का प्रकार।
सफल दान वो, जिसमें श्रद्धा अधिमात्र।
॥श्रद्धावान॥

श्रद्धावान याज्ञिक बढ़ाते हैं सुयश (2)
अभ्युदय होता जीवन का आदर्श
सत्प्रयत्न ही सफलता का विपाक
॥श्रद्धावान॥

हे श्रद्धे! भला कर सब दानियों का (2)
सर्व याज्ञिकों का सर्व ज्ञानियों का
उदित रहे अग्निरूप यज्ञमय प्रकाश
॥श्रद्धावान॥

---

*(**अधिमात्र**) अधिक प्रमाण का। (**विपाक**) परिणाम, कर्म का फल।*

74. श्रद्धा का रहस्य

यथा देवा असुरेषु श्रद्धा मुग्रेषु चक्रिरे।
एवं भोजेषु यज्वस्वस्भाकमुदितं कृधि ॥

ऋ. १०.१५१.३

178 तर्जः *जन पळ भर म्हणतिल हाय हाय-451*

श्रद्धा बल करता दिव्य काज
जो भय का कर देता विनाश

॥श्रद्धा बल॥

देश धर्म जाति का गौरव
श्रद्धा ही मन में उपजाये
श्रद्धालु बलिदानी बनके (2)
अभय होके करते प्राणत्याग (2)

॥जो भय का॥

ऐसे तेजस्वी तो होते
विद्वानों के श्रद्धा-भाजन
जागरुक सद्भाव में रहते (2)
बनें आदर सत्कार के पात्र (2)

॥जो भय का॥

भूखों को भरपेट भोजन दे
नंगों को आच्छादित कर दे
श्रद्धा प्रीति से दे सत्कार (2)
अभ्युदय से वो पायें प्रकाश (2)

॥जो भय का॥

(श्रद्धा भाजन) *श्रद्धा के आधार* ***(आच्छादित)*** *ढक देना।* ***(अभ्युदय)*** *उन्नति, मनोरथ की सिद्धि।*

75. श्रद्धा का रहस्य

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धा हृदय्य१या कूत्या श्रद्धया विन्दते वसु॥

ऋ. १०.१५१.४

179 तर्जः *जनपळ भर म्हणतील हाय-हाय- 451*

श्रद्धा में अर्पित श्रद्धावान
करते हैं यज्ञ व प्राणायाम

॥श्रद्धा में॥

प्राणायाम याजन हितकारी
हृदय बना देते अविकारी
उन्नत भाव ही सेवित करते (2)
श्रद्धा का करते अभ्युत्थान (2)

॥श्रद्धा में॥

भौतिक आध्यात्मिक धन पायें
सद्विचार सदाचार जगायें
सत्य अहिंसा जैसे सुभाव (2)
करे आत्मा को विभूतिमान (2)

॥श्रद्धा में॥

आओ ऋत्विक हे यजमानो
प्राणायाम को रक्षक मानो
श्रद्धा पुरित यज्ञभाव हों (2)
कांतिमय होवें पुष्ट प्राण (2)

॥श्रद्धा में॥

---

*(**अविकारी**) निर्विकार। (**अभ्युत्थान**) उद्भव, उन्नति। (**विभूतिमान**) ऐश्वर्यशाली, धनवान। (**ऋत्विक**) पुराहित, याज्ञिक कर्मकाण्ड करने वाला। (**याजन**) यज्ञकर्म।*

76. श्रद्धा का रहस्य

श्रद्धां प्रातहवामहे श्रद्धां मध्यदिनं परिं।
श्रद्धा युर्य्यस्य निमहुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः॥

ऋ. १०.१५१.५

180 तर्जः *जन पळ भर त्हणतील हाय हाय-451*

हे श्रद्धा आओ प्रातः काल
फिर तुम्हें बुलायें सायंकाल ॥फिर तुम्हें॥

है मध्याह्न का सूर्य विकसित
है प्रदीप्त श्रद्धा के उपमित
ईश्वर का ही देवदूत बन (2)
संसार की करता जो सम्भाल (2) ॥हे श्रद्धा॥

हृदय के अन्तस्तल में आओ
अपने ही सदृश्य बनाओ
निशदिन पावन कर्म कराओ (2)
हे श्रद्धे! बन जाओ कृपाल (2) ॥फिर तुम्हें॥

ईश भजन या आत्मचिन्तन हो
या जीवन का अर्थपार्जन हो
श्रद्धा से जीवन को जगाओ (2)
रखो हाथ में श्रद्धा की मशाल (2) ॥फिर तुम्हें॥

बिन श्रद्धा ना कर्म है सात्विक
संसारिक हो या पारमार्थिक
श्रद्धावान की रहे सफलता
श्रद्धा में ही हो चाल ढाल (2) ॥फिर तुम्हें॥

---

*(**उपमित**) तुल्य, सदृष्य। (**अर्थापार्जन**) अर्थ संचय।*

77. श्रद्धा का रहस्य

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धा माप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते॥

यः १९/३०

दृष्ट्वा रूपे व्यकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः।
श्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः॥

यः १९/७७

181 तर्जः *पतिदेव पुजिते (गंगा वनात) 1927*

हम अपने व्रत के द्वारा पाते हैं योग्यता
इस योग्यता से आदर, आदर से सत्यता॥

श्रद्धा से युक्त होकर करना है सत्यधारण
श्रद्धा ही मानवों की बने सत्य का ही कारण
और सत्य से ही आत्मा में जागती प्रभा॥
इस योग्यता से...

है प्रमाणों से परीक्षित श्रद्धा से सत्य संवृद्ध
अनृत में स्थित अश्रद्धा जो प्रत्यक्षप्रमाण विरुद्ध
सच्चा श्रद्धालु केवल सत्य व्रत में शोभता॥
इस योग्यता से...

इक सत्य इक असत्य लक्षण पृथक् पृथक हैं
इक सृष्टि नियम के संग दूजा नियम विमुख है
सत्याचरण से पाते उत्साह प्रथमतः॥
इस योग्यता से...

लज्जा संकोच भय है असत्य आचरण में
आत्मा बनाते पापी जाते अधःपतन में
खो देते हैं जीवन का उत्साह सर्वथा॥
इस योग्यता से...

श्रद्धा से सत्य जागे, मन से कुटिलता भागे
जीवन को करके उन्नत, बढ़ जायें आगे आगे
जानो वो सत्य श्रद्धा, ईश्वर जो धारता॥
इस योग्यता से...

---

*(**परीक्षित**) परखा हुआ। (**प्रभा**) तेज, कांति। (**संवृद्ध**) उन्नत, बढ़ा हुआ। (**प्रत्यक्ष प्रमाण**) सत्य प्रमाणों से सिद्ध। (**कुटिलता**) टेढ़ापन, छल। (**प्रथमतः**) सबसे पहले।*

78. वह बड़ा है

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते स भ्रातरो वावृधुः सोभगाय।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुधा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः॥

ऋ. ५.६०/५

385 तर्जः *भगवान ने अपने जैसा हर इक इन्सान 1464*

ना बड़ा ना कोई छोटा सबमें आत्मा समाई।
इक माता-पिता के पुत्रों में ये ऊँच-नीच क्यों आई?॥
॥ना बड़ा॥

संसार के इस आँगन में क्यों फैलाते हो अन्धेरा?
क्यों जाति पाति की आड़ में करते हो तेरा मेरा,
प्रभु ने जो ज्योति जलाई मानव क्यों तूने बुझाई॥
॥ना बड़ा॥

काले गोरे क्या हब्शी क्या धनिक सेवक या श्रमीजन
क्षत्रिय अछूत क्या ब्राह्मण भारती और क्या अमरीकन
बुद्ध जैनों मुसलमाँ हिन्दू हैं इसाई परस्पर भाई॥
॥ना बड़ा॥

सब मरुत देव इस जग के मिलकर कल्याण प्रसारें।
जिससे उन्नत हों मानव, ना घृणा द्वेष को धारें
बन्दूकों तोप गैसों की ना छेड़ें कभी लड़ाई॥
॥ना बड़ा॥

कल्याण-कर्म करने वाला प्रभु पिता हमारे संग है
हम अमर पिता की सन्ताने क्यों हृदय हमारा तंग है
आ जाओ भेद भुलाकर कल्याण की करें अगुआई॥
॥ना बड़ा॥

ये प्रकृति हमारी सुमाता सुखदायक है दुःख त्राता
ऐश्वर्य दुग्ध की सेविका है, समदर्शी हितैषिता माता
हर पुत्र का है वो आँचल, हम क्यों फिर करें अधमाई॥
॥ना बड़ा॥

कोई देश भेष का हो मानव इक दूजे का हित चाहें
इस धरा पे बने ना दानव, ये ऊँच-नीच को मिटायें
उद्देश्य में शोभे मानवता जिसमें हो सबकी भलाई॥
॥ना बड़ा॥

---

*(**मरुतदेव**) देवता मनुष्य। (**अगुआई**) पथ प्रदर्शन का काम। (**अधमाई**) दुष्टता, नीचपन। (**सुमाता**) उत्तम माँ। (**हितैषिता**) कल्याण चाहने वाली।*

79. उद्धार का मार्ग

अ॒ग्निमिन्धा॑ने॒ मन॑सा॒ धिय॑ सचेत॒ मर्त्यः। अ॒ग्निमी॑धे॒ वि॒वस्व॑भिः॥

ऋग. (८.१०२.२२ साम. १९)

665 तर्जः *भजमन भजमन सदा हरि का नाम*

यज्ञकर यज्ञकर कर्म तू कर निष्काम
उसकी दया से बन जाएगा तू भी अग्नि-समान
॥यज्ञकर॥

जो भी प्रतिदिन अग्नि जलाकर अग्निहोत्र रचाये
अग्नि जैसे गुण जीवन में यज्ञ के साथ जगाये
आत्म ज्योति फिर क्यूँ न जागे क्यों न बने तू महान?
॥यज्ञ कर॥

बाह्ययज्ञ कर के अन्दर का यज्ञ तू कर ले धारण
बाह्ययज्ञ से, शतगुण बेहतर अन्तर्मन का क्षालन
कर प्रदीप्त इस आत्मग्नि को कर मेधावी काम॥
॥यज्ञकर॥

आत्म निरीक्षण आत्मिक चिन्तन सद्विचारवत कर्म
जाप धारणा ध्यान समाधि है आत्मा का धर्म
तमो निवारक ज्ञान-रश्मियाँ बनेंगी तारक त्राण॥
॥यज्ञकर॥

सूर्य रश्मियों से संसार की ज्योति होतीं प्रबुद्ध
सत्यज्ञान-उपदेष्टा करते वेद-सूर्य से शुद्ध
कर लूंगा मैं प्रतिदिन उज्जवल, कर्म मनोरथ ज्ञान॥
॥यज्ञकर॥

---

*(**निष्काम**) कामना रहित। (**शतुगण**) सौ गुना। (**क्षालन**) शुद्ध करना। (**मेधावी**) तीव्र बुद्धिमान, धारणा शक्ति वाला, विद्वान, पंडित। (**तम**) अन्धकार। (**प्रबुद्ध**) चैतन्य, खिला हुआ। (**त्राण**) रक्षक। (**उपदेष्टा**) उपदेश करने वाला। (**रश्मि**) किरण।*

80. तत्वदर्शी तेरी शोभा से अमृत धारते हैं।

तव श्रिया सुदृशो देव देवाः पुरु दधाना अमृतं सपन्त।
होतारंमाग्निं मनुषो नि पेदुर्दशस्यन्त उशिजः शंसमायोः॥ *ऋ. ५.३.४*

50 तर्जः *भीतर अनन्त, प्रकाश-343*

भीतर अनन्त प्रकाश प्रकाशित(2)
याज्ञिक आत्मा हुई विभासित॥

॥भीतर आनन्त॥

सत्यासत्य के जानो भेद आत्मा भिन्न है भिन्न है देह (2)
शरीर विषयों से जो विरक्ति यही वैराग्य की वृत्ति॥

॥भीतर॥

शम[1], दम[2], उपरति[3], श्रद्धा[4], तितिक्षा[5], समाधान[6] ये षटक सम्पत्ति (2)
श्रवण मनन निदिध्यासन दर्शन प्राप्त करायें मुक्ति॥

॥भीतर॥

ईश उपासना शुक्ल कर्म सब, धारण कर मिलती है मुक्ति (2)
करें भक्ति जो जगन्नायक की पायें अमृत तृप्ति॥

॥भीतर॥

जब तक जीव को जग का बंधन, कर्म अनुसार है सुख दुख क्रंदन (2)
आनन्द मिले ना आसक्ति से, रहे ग्रस्त दुर्गति॥

॥भीतर॥

परम तत्वदर्शी ऋषि योगी, आत्मा की शोभा को वरते (2)
बोध कराते मुक्ति मार्ग का, बनते आत्म सुदर्शी॥

॥भीतर॥

तेज आन्तिरिक आत्माओं का महात्माओं को प्रभु है देता (2)
ब्रह्मलोक के आश्रित कर प्रभु, देते मोक्ष की सिद्धि॥

॥भीतर॥

---

*(**विभासित**) ज्योतिर्मान। (**शम**[1]) अपनी आत्मा और अन्तकरण को धर्माचरण में प्रवृत्त कराना। (**दम**[2]) कर्मेन्द्रियों को व्याभिचार आदि कुकर्मों से बचाकर जितेन्द्रियत्वादि शुभकर्मों से प्रवृत्त रखना। (**उपरति**[3]) दुष्ट कर्मों वाले मनुष्य से सदा दूर रहना। (**श्रद्धा**[4]) वेदादि सत्यशास्त्रों और उनके बोध से पूर्ण आप्तविद्वान सत्य उपदेष्टा महानुभावों के सत्यवचनों को मानना। (**तितिक्षा**[5]) चाहे निंदा स्तुति लाभ हानि क्यों न हो किन्तु हर्ष शोक छोड़, मुक्ति साधनों में लगे रहना। (**समाधान**[6]) चित्त की एकाग्रता। (**वृत्ति**) स्वभाव। (**तृप्ति**) संतोष। (**ग्रस्त**) पकड़। (**शुक्ल**) निर्दोष, पवित्र। (**आसक्ति**) लगाव। (**दुर्गति**) विपत्, नरक। (**तत्वदर्शी**) तथ्यों को जानने वाला, दार्शनिक। (**बोध**) ज्ञान। (**सुदर्शी**) सुन्दर विचारशील। (**सिद्धि**) मुक्ति। (**वैराग्य**) स्वार्थ मूलक प्रवृत्तियों का त्याग।*

81. धर्म मेघ का आवाहन

वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे। पवमान स्वाध्यः॥

साम. ४८०-७८४ *ऋग.* ९.६५.४

674 तर्जः *मळ तुळलीगल पेरिन नीडूमी-674/042*

पड़ा नालियों में जल तो सड़ता रहा
तपा सूर्य से वाष्प, बन उड़ता रहा
पृथ्वी से ऊपर ये जल उठ गया
होके सवन अब वो निर्मल हुआ
कन्धों पे वायु के, जल चढ़ गया
आकाश पे उसका तख़्त बन गया

॥पड़ा नालियों में॥

जिस जल को इस पृथ्वी ने दूर किया
बाट जोहे नैन उठाती वही ये धरा
सूखने लगा है इस पृथ्वी का गला
हरी कर दो छाती मेघों कर दो वर्षा
मेधों ने सुन ली धरा की पुकार
रिमझिम लगी बरसने सावन-फुहार।

॥पड़ा नालियों में॥

योगियों ने भी तो ऐसा यज्ञ किया
बाजार गलियों से ही मानव चुना
तपस्या की किरणों पे सवार हो गया।
देवयान का वो योगी यात्री बन गया।
वासी जमीन का ना हमें वो लगा
रास्ता प्रकाश का ले वो ऊँचा उठा

॥पड़ा नालियों में॥

तेजोमय मुखमण्डल पे झलका प्रकाश
चमका दिया अग्नि ने उड़ा लेके आँच
सपनों का स्वर्ग उसकी आँखों में बसा
सूक्ष्म संसार का बाह्य रूप दिखा
भावना आशाओं का योगी का जहाँ
ऐसे दिव्य योगी को ढूँढता समाँ॥

॥पड़ा नालियों में॥

82. त्रिविध महान ऐश्वर्य

प्र मंहिष्ठाय बृहते ब्रहद्रये सत्य सुष्माय तवसे मतिं भरे।
अपामिव प्रवणे यस्ये दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम्॥

ऋ.१.५७.१ अथ २०/१५/१

971 तर्जः *मळयिल निरयुम पुडपोले–036*

मेरा मन तेरे गुण क्या तोले
चरणों में आया हूँ तोरे
तू तो परम दानी है प्रभु
दे ऐश्वर्य तेरे मोहे॥

मेरा मन...

हे बल वाले तू बल दे अद्‌भुत जिससे आत्मा की शक्ति बड़े
तेरे गुणों के आकर्षण से मुझको सुख समृद्धि मिले
वाह भगवन्‌! तू है कितना करुण बह रहा ऐश्वर्य तेरे कारण
बेरोक टोक नदिया जैसा बह रहा ऐश्वर्यों का धन॥

मेरा मन...

काल अनन्त से कृपा बरसाये बहते ऐश्वर्य का अन्त नहीं
छूट खुली है कोई भी ले ले, तुझसा कोई दयावन्त नहीं
तुझ महादानी के ऐश्वर्यों के आगे तो कुछ भी नहीं
प्रेम श्रद्धा भक्ति जहाँ पाई, तेरे चरण भी मिले वहीं॥

॥मेरे मन॥

83. तेरे स्तोता को भय ना हो

पाहि नो अग्ने पायुभिरजस्रैरुत प्रिये सदन आ शुशुक्वान्।
मा ते भयं जरितारं यविष्ठ नूनं विदन्मा परं सहस्वः॥

ऋ. १.१८९.४

955 तर्जः *मळयिल निरयुम पुड़ पोले-036*

हे ईश्वर तुम अग्नि हो, अग्रगन्ता हो मार्गदर्शक हो।
अग्नि समान प्रकाशक हो, उन्नायक हो ज्योतिर्मय हो
तुम पतितों को लेते उबार, डूबनहारों के तारक हो
हे ईश्वर...

पाप के पङ्क में फँसा हुआ भी, तुझ प्रेरक से पाये सबक
जिसके राखन हारे तुम हो, गिरि से भी गिर कर जाए बच
आऽऽ, तुम हो करुण दयावान वरुण सुख वर्षक हो दुःखवारक हो॥
हमें भी अपनी छाया में लेकर दुःख संताप व कष्ट हरो...
हे ईश्वर...

हे परमेश! संताप के वारक विपद् विदारिणी शरण में लो,
हृद-मन्दिर में आके विराजो, हे तेजस्वी देव प्रभो!
आऽऽ, हे ज्योतिर्मय अपने प्रकाश से, तमोभाव विदीर्ण करो,
डूबें गिरें या ठोकर खाएँ इन सबका निस्तार करो॥
हे ईश्वर...

तुम जैसी तरुणाई कहाँ है, प्रभु तुम जैसा बाँकापन
कहाँ तुम्हारे जैसी वीरता, सदा युवा हो तुम भगवन्
मुझ स्तोता पर कर दो कृपा, हों भयमुक्त भरित जीवन
तुम्हरी तरुणता बलवत्ता का दिव्य स्वरूप हृदयंगम हो॥
हे ईश्वर...

---

*(**अग्रगन्ता**) आगे जाने वाला, प्रधान। (**पतित**) गिरा हुआ। (**उन्नायक**) उठाने वाला। (**निस्तार**) पार लगाना। (**तरुणाई**) जवानी। (**बाँकापन**) वीरता, बहादुरी। (**हृदयंगम**) मन में बैठा हुआ।*

84. तेरे सखा को क्या मिलता है?

अश्वी रथी सुरूप इद्, गोमा इद्रिन्द्र ते सखा।
श्वात्रभा वयसे सचते सदा इन्द्रो याति सभामुप॥

ऋ. ८.४.९

964 तर्जः *मकयित निरयुम पुड पोले (श्रेया)-036*

हे परमेश्वर इन्द्र हो तुम, अखिल जगत सम्राट हो तुम
तेरे सखित्व का फल है महान कर लें स्थापित इसे प्रिय भगवन्
ललित मनोहर सुन्दरतम सख्य तुम्हारा है परिपावन

है शरीर रथ, प्राण हैं अश्व, प्रभु के सखितव से बनता प्रशस्त
व्याधियों की चोटों से जर्जर, कभी ना होता ये बल-रथ
हाँऽऽऽ बनता सुरूप तेरे अनुरूप बनता मोहन तेरे संग
परोपकार सज्जनता साधे, सीखता है जीने का ढंग
हे परमेश्वर...

सखा प्रभु का बन जाता है प्रभु के सख्य से ही 'गोमान्'
भरे ही रहते सखा के कोठे, पाता ही रहता अन्न धन धान
होऽऽऽ, भाव अराति छोड़ के आता दीन दुःखी अन्यों के काम
कर्मशूर चिरजीवी होता प्रभु का सखा है कर्म प्रधान॥
हे परमेश्वर...

सौम्य आह्लादक चन्द्र समान ही बन जाता वो सखा मनोहर
उसकी छटा से प्रभावित होकर लोग समझते उसको धरोहर
हे महाराजाधिराज हे इन्द्र हमपे भी कभी कृपा अपनी बरसा
हमें भी सख्य-विभूषित कर के सख्य रूप अमृत छलका॥
हे परमेश्वर...

---

*(**अखिल**) समपूर्ण। (**ललित**) सुन्दर, चारू। (**प्रशस्त**) उत्तम, अतिश्रेष्ठ। (**गोमान्**) प्रशस्त गौओं, प्रकाश किरणों, वाणियों, भूखण्डों एवं इन्द्रियों वाला हो जाता है। (**अराति**) अदान, स्वार्थ भाव। (**आह्लादक**) प्रसन्नता देने वाला। (**सौम्य**) शान्त। (**मोहन**) मन को लुभानेवाला।*

85. मस्त मनीषी

अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम्।
समुद्रस्याधि विष्टपि मनीषिणो मत्सरासः स्वर्विदः॥

साम. ५१८,८५६ ऋ.९.१०७.१४

727 तर्जः *मळयिल रात्री मळयिल कुडियुम 734*
(राग-मेघ मल्हार)

संयम में है मस्ती, सोमरस में जो झरती
भीजे, रस में हरदम, रहे बस में मन
गुज़रे हँस के जिन्दगी॥ ॥संयम में॥

भोग विलासों के हलाहल को, पीता ही नहीं मनीषी
प्रेम पियाला, मुँह से लगा ले (2)
अमृत रस है विनयन, संयम अहिंसन॥ ॥संयम में॥

सच्चा मनीषी है हर्ष-सरोवर, गति मति में झरे मस्ती
हृदय तरंगों की चोटी पर (2)
जागे उसकी उमंग आनन्द व तरंग॥ ॥संयम में॥

चलता फिरता सोम का झरना, मानुष जीवन कहलाए
विष का प्याला फिर क्यों है पीना (2)
सोम का कर ले सवन ऋतवन् मधुमन्॥ ॥संयम में॥

सोम का रस संचारी रस है, खुद पीते और पिलाते
'ये पचन्ति आत्म कारणात्'
अच्छा नहीं ये प्रसंग, अवसन्न है विषम॥ ॥संयम में॥

भक्त भी बालक है कहलाता, खुद हँसता व हँसाता
सबको हँसाये रख तू हरदम (2)
हर्षित रख हृदि-मन आत्मन्, अविपन्न ॥ ॥संयम में॥

---

*(**विषम**) भयानक, कष्टदायक। (**हलाहल**) बहुत तीव्र विष। (**मनीषी**) बुद्धिमान, पण्डित। (**ऋतवन**) नियमों पर चलने वाला। (**संयम**) हानिकारक वस्तुओं से बचना। (**संचार**) गमन गति। (**अविपन्न**) स्वच्छ, विशुद्ध।*

86. पूर्ण परमात्मा

पूर्णात्पूर्णमुदचति पूर्ण पूर्णेन सिच्यते।
उतो तदद्य विद्याम यतस्तत्परिषिच्यते॥29॥

अथर्वः १०.८.२९

761 तर्जः *मळयुड़ी मिडिमनचिराडिल-664*

(राग-यमन)

आओ हम सब ये जानें, परिपूर्ण है संसार
कोई त्रुटि ना कमी है क्योंकि प्रभु हैं आधार
परिपूर्णता उसकी कर सकें ना अनुभव
क्या समझ सकेंगे पूर्ण पुरुष का प्यार
(तन न नन नन)

॥आओ हम॥

दृष्टि चाहे हमारी होती भिन्न-भिन्न
पर समूची सृष्टि दीख रही अविच्छिन्न
जब पूर्ण पुरुष ने रचा है जगत
फिर तो कैसे न होगा कहो परिपूर्ण
रख दिया ना केवल, रचना करके जगत (2)
उसे सींच रहा है प्रभु सर्वाधार॥

॥आओ हम॥

हमने जान लिया है प्रभु हैं निपुण
जग-जवन को हमारे लिये लिया चुन
आओ पहचाने परिपूर्ण पालक को हम
उसके पथ का पथिक बन हो सार्थक जनम
उसकी फुलवारी के बनते जाएँ सुमन (2)
उसकी कृतियाँ कृपामय बनी हैं उदार

॥आओ हम॥

---

*(**जवन**) वेग युक्त। (**अविच्छिन्न**) अखण्डित।*

87 मैंने वेदमाता की स्तुति की है

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्।

अथर्व. १९.७१.१

720 तर्जः *मळयुल्ल रात्री मानसिन्द तू वरिल 888*

मैंने वेदमाता की स्तुति की हृदय से, और शुभ चिन्तन किया है,
विदुर वेदमाता के ज्ञान के उपदेशों से सार्थक जीवन जिया है॥
॥मैंने वेदमाता॥

वेदमाता का स्तवन अध्ययन अर्थ-चिन्तन और गान करें
जीवन का उसे अंग बनाकर अमृत रस का पान करें
है वेदमाता गायत्री, गायें उसे दिवस व रात्री
परमेश्वर रूप कवि का गायन है हृदयवासी
हर इक द्विज को जिसने पावन किया है॥ ॥मैंने वेदमाता॥

सानिसा सानिसा सानिसा सानीसा रे,
सानि सा सानिसा सानिसा सानीसा रे,
सानीरेसानी, गरेसानी॥
सुनना है सुन लो, ज्ञानियों का अनुभव,
वेद-स्तवन-से दीर्घायु सम्भव
दीर्घ जीवन में प्राणवान बनके
पाई प्रजाएँ सुयोग्य और अनवर
पशुपालन की शिक्षा दी, मन्त्रों ने यश कीर्ति दी
हुई पूजित धन प्राप्ति, ब्रह्मतेज की आत्मिक शान्ति
बस निश्चित समझ लो सब कुछ दिया है॥ ॥मैंने वेदमाता॥

विद्या की देवी सरस्वती मात ने, करा दी हृदयंगम विविध विद्यायें।
आत्मलोक में हुईं प्रतिष्ठित, ऐश्वर्य निधियों की बहा दी धाराएँ।
बनी आत्म-अङ्ग वो मेरी, किरणें निखरीं सुनहरी,
माँ की वाणी है स्नेही और मुझे बनाया सेवी
वेदमाता ने हृदयों में घर कर लिया है॥ ॥मैंने वेदमाता॥

---

*(**विदुर**) बुद्धिमान। (**अकत**) संपूर्ण। (**अनवर**) श्रेष्ठ, उत्तम। (**पूजितधन**) सेवा से प्राप्त धन। (**द्विज**) जिसका दो बार जन्म हो, ब्राह्मण। (**हृदयंगम**) आत्मसात करना। (**स्तवन**) स्तुति करना। (**प्रतिष्ठित**) आदर प्राप्त, विख्यात। (**घर करना**) समा जाना। (**सेवी**) सेवा करने वाला।*

88. उषाओं के आगे चमकने वाला राजा

श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः।
वसुः सूनु सहसो अप्सु राजा वि भात्यग्र उषसामिधानः॥ *ऋ.१०.४५.५*

716 तर्जः *मळविल्लिन नरगिन्दे मुखमुन्नु काणा 2703*

आओ हम अग्निदेव प्रभु राजा की शरण में जाकर पा लें चमक
प्रभु देता है अपने साधक को त्रिवृत् शोभा श्री यश अकत
सारे ऐश्वर्यों का एकमात्र स्वामी वो देता मनुष्यों को धन यश सम्पद्॥
आध्यात्मिक मानसिक और शारीरिक शोभाओं को वो निखारे सतत्॥
॥आओ हम॥

कुसंगति ईर्ष्या द्वेष में मानव की, सम्पत्तियाँ जब बिखरने लगे
उस वक्त जागरुक करता है ईश्वर ही, और मार्ग दिखाता उसको सुगत।
॥आओ हम॥

मानव की भौतिक सम्पत्तियों को धृत रखने में बनता प्रभु ही निमित्त।
अभीप्सा मनीषा प्रतिभा बुद्धियों का ईश्वर केवल है प्रकष्ट रक्षक।
॥आओ हम॥

उजड़े हुओं को बसाने वाला है वो, और जो बसा उसे करता है दृढ़
'सूनुसहस्' का है, साहस मनोबल का है अग्निदेव दाता बृहत्॥
॥आओ हम॥

प्रतिदिन उदित होती चमकीली उषाएँ क्या उनकी शक्ति है स्वयं
प्रदत्त द्योतक है इनका अग्नि स्वरूप परमेश्वर, हर उषा के आगे चलता सहज
॥आओ हम॥

पर्जन्य-जलमें जो विद्युत है विद्योतित उस जल में द्युति जल की अपनी नहीं
वो द्युति तो है अद्भुत परमेश्वर की जिसमें परमात्माग्नि चमके भरसक।
॥आओ हम॥

क्या सूर्य क्या चाँद क्या तारे क्या विद्युत प्रभु की तनिक ज्योति लेकर चमकें
आओ विद्युत उषाओं के अग्निरूप द्योत राजा से पायें चमक अक्षत।
॥आओ हम॥

---

*(**त्रिवृत्**) तिगुना(आध्यात्मिक, मानसिक, शारीरिक)। (**सुगत**) अच्छी तरह जाने वाला। (**धृत**) स्थिर रहने वाला। (**निमित्त**) उद्देश्य। (**अभीप्सा**) इच्छा। (**प्रकष्ट**) प्रबल। (**सोमगोपा**) सौम्यता आदि गुणों का रक्षक। (**उपगत**) प्राप्त। (**सूनुः**) बल का पुत्र। (**द्योतक**) प्रकाशक। (**द्युति**) चमक। (**पर्जन्य**) बादल, मेघ। (**भरसक**) यथाशक्ति। (**द्योत**) प्रकाश रखने वाला। (**अक्षत**) नाश न होने वाला।*

89. उत्तम गुण मुझमें आएँ

यज्ञस्य चक्षु प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि।
इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः। *अथर्व. २.३५.५*

770 तर्जः *मळविल इन नरगिन्दे मुखमुन्नु काणा 703*

हे देवों! जीवन के यज्ञों में आओ।
होकर प्रसन्नचित्त मुझमें समाओ।
हे देवों! सद्गुण सद्भाव सद्धर्म
जाग्रत जीवन ज्योतियाँ जगाओ।
विभु विश्वकर्मा का विस्तृत किया यज्ञ
कर्मों की पावकता से पूर्ण हो
कर्मों की संयमता और त्यागमयता से
शत वर्षों तक दिव्य यज्ञ कराओ॥ ॥हे देवों॥

मेरे जीवन यज्ञ का भरण पोषण
करने वाली मेरी दर्शन-शक्ति
पाती रहे सत्य ज्ञान की शिक्षा
जीवन में पाती रहे उन्नति॥ ॥हे देवों॥

जब मानसिक व शारीरिक शक्ति के
मन इन्द्रियाँ देह तुम ही हो देव
तुम ही तो हो मुझको याज्ञिक बना कर
मार्ग दिखाते हो सात्विक श्रेय॥ ॥हे देवों॥

सब ज्ञान इन्द्रियाँ और कर्म इन्द्रियाँ
आपस में मिल जुलकर करती हैं यज्ञ
ईश्वर की साक्षी में ईशार्पित बुद्धि से
बनती हैं श्रेष्ठ पवित्र और प्रज्ञ॥ ॥हे देवों॥

ऐ मन मनस्विन्! निज बुद्धि बल से
चिन्तन मनन करके हो जा याज्ञिक
निदिध्यासन से विभु विश्वकर्मा की
दिव्य शक्तियों से हो जा प्रभावित॥ ॥हे देवों॥

---

*(**मनस्विन**) उच्च विचार वाला। (**विभु**) सर्वव्यापक परमात्मा। (**विश्वकर्मा**) ब्रह्मा, सम्पूर्ण संसार रचने वाला। (**श्रेय**) यश तथा कल्याण देने वाला। (**सात्विक**) वह भाव जिसमे अधिक सतोगुण हो। (**प्रज्ञ**) ज्ञानी, जानकार।*

90. ऐश्वर्य पाना चाहता हूँ

यद्दीळाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शानेपराभृतम्। वसु स्पार्ह तदा भर॥

साम.२०७, १०६७, अथ २०.४३.२

744 तर्जः *मळविलिन नरगिन्दे मुखमुन्नु काणा-703*

परमैश्वर्यवाले इन्द्र तुम्हारा, ऐश्वर्य कितना महान है! (2)
इच्छा है मुझको भी ऐसे ऐश्वर्यों की रसमय जो अमृत के समान है,
शम दम उपरति श्रद्धा तितिक्षा समाधान जिसका परिणाम है
दृढ़-वीर पुरुषों में है जो निरन्तर, हे इन्द्र! तेरा ही वरदान है॥
परमैश्वर्य वाले...

(1) संसार के धनियों को देखकर प्रभु मुझको आकर्षण तो होता नहीं
अदम्य उत्साह दृढ़ता-बलवाला ही करता है मोहित, जो ऋतवान है॥
परमैश्वर्य वाले...

(2) ऐसे विजयशील गुणवानों को देख, जागती है मुझमें श्रद्धा प्रचूर
हे इन्द्र! ऐसा ही ऐश्वर्य दे मुझको सार्थक जीवन का ही अरमान है॥
परमैश्वर्य वाले...

---

*(**अदम्य**) प्रबल, अजेय। (**ऋतवान**) नियमों का पालन करने वाला। (**प्रचूर**) अत्यधिक। (**शम**) अपनी आत्मा और अन्तःकरण का धर्माचरण में प्रवृत्त कराना। (**दम**) कर्मेन्द्रियों को व्याभिचार आदि कर्मों से बचाकर जितेन्द्रिय बनाकर शुभ कर्मों में लगाना। (**उपरति**) दुष्ट कर्मों वाले मनुष्यों से सदा दूर रहना। (**श्रद्धा**) वेदादि सत्य शास्त्रों और उनके बोध से पूर्ण आप्त विद्वानों सत्य उपदेष्टा ओं के सत्य नियमों का मानना। (**तितिक्षा**) चाहे निन्दा स्तुति लाभ हानि क्यों न हो किन्तु हर्ष शोक छोड़ मुक्ति साधनों में लगे रहना। (**समाधान**) चित्त की एकाग्रता।*

91. पावनकर्ता तेरी देदीप्यमान ज्योतियाँ

पुवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत्। अग्ने क्रत्वा क्रतूँ१रनु॥

यजु.१९/४०

841 तर्जः *मणी कुट्टी कुरुम्बु डो रम्मी पूवाली : 215*

मेरे सच्चे प्रभुवर! सर्वहितकारी
तेरी ज्ञान ज्योति का हूँ मैं आभारी

तन्दन तन्दन ना तन्द नाना, तंद ना ना ना (2)॥ मेरे सच्चे

दिव्य है तू, दिव्यक्रतु
मेरा सच्चा नायक तू
करें पवित्र तेरे क्रतु
तेरे पवित्र वेद-ज्ञान से
होते पवित्र अनाचारी॥ मेरे सच्चे...

श्रद्धा भक्ति की अगन
मन में भरे उमंग
अनुपम, है शरण
आ गले मिल लें
हे क्रतून! कर कृपा
मिले तुझसे प्रज्ञा
जिससे करुँ उत्तम कर्म सदा
श्रेष्ठ कर्मों का मैं करके सम्पादन
सच्चा बनूँ मैं तेरा ही अनुयायी॥ मेरे सच्चे...

मेरे भगवन्! अनुदिन, करो जागृत मेरा मन
अगुवा तू बने, करुँ तेरा अनुसरण
कर्मों को बुद्धि पूर्वक मैं करके
योगी-तपस्वियों को मन में धर के
उनसे भी प्रेरणा लेके बन जाऊँ
तेरी तरंगिनी धारा का अनुरागी॥ मेरे सच्चे...

(क्रतु) *संकल्प।* ***(अनाचारी)*** *कुकर्मी।* ***(अनुदिन)*** *नित्य प्रति, प्रतिदिन।* ***(सम्पादन)*** *प्रस्तुत करना ठीक करना।* ***(अनुयायी)*** *अनुकरण करने वाला।* ***(अनुरागी)*** *प्रेमी।*

92. मधु शास्त्र विद्या की महा महिमा

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि॥2॥ *अथ. १/३४/२*

476 तर्जः *मधुमागसी माझा सख्या तरी-2584*

माधुर्य प्राप्ति में लगा दूँ मैं, भर दो मधुरस हे माधुरी!॥
मन में जागे मधु-सत्कृति॥ ॥माधुर्य॥

जीवन में घुल मिल जाओ तुम, मन बुद्धि को मधुर बनाओ (2)
जब बोलूं मीठा ही बोलूं, सत्य प्रतिज्ञ ये होवे मति॥ ॥माधुर्य॥

जीभ के अग्रभाग में मधु हो उससे अधिक हो मिठास मूल में (2)
व्यवहारों में ना हो दिखावा(2) वचन मधुर हों सरल, सुचि॥ ॥माधुर्य॥

यदि जिह्वाग्र हो प्रेम-परियत्त, मूल में ना फिर द्वेष-द्रोह हो।(2)
बनावटी माधुर्य से बेहतर(2) मन से उठी कटुता ही सही॥ ॥माधुर्य॥

मत्सर-मन माधुर्य क्या जाने सुक्त सखित्व को क्या पहचाने? (2)
स्वार्थ बाहुल्य में कर्म हो कलुषित (2) हृदयी किलोल कल काकलि॥॥माधुर्य॥

इसलिए मेरी वाणी के मूल में सरसे बरसे मधु का रस (2)
प्रेम भरे मानस-मधु स्रोत से उठे किल्लोल कल काकलि॥ ॥माधुर्य॥

हर चेष्टा व्यवहार कर्मकृति मन बुद्धि विमर्ष जगाओ (2)
वास करो सुसिक्त सङ्कल्प में (2) परिपूरित हो सुकृति॥ ॥माधुर्य॥

है चैतन्य चातुर्य जगाओ मधुमय अंतःकरण सजाओ (2)
चित्त प्रदेश में व्याप्त रहो तुम, हे प्रभु मेरे तमोहरि॥ ॥माधुर्य॥

---

*(**माधुरी**) मिठास, सुन्दरता। (**सत्कृति**) श्रेष्ठ कर्म। (**सत्यप्रतिज्ञ**) सत्य पसंद करने वाला। (**सुचि**) पवित्र। (**जिह्वाग्र**) जीभ का अगला भाग। (**परियत्त**) घिरा हुआ (चारों ओर से)। (**द्रोह**) षड्यंत्र, द्वेष। (**कृति**) रचना। (**संशित**) कठोर व्रत। (**चेतन्य**) चित्त स्वरूप आत्मा सचेत, सावधान। (**विमर्श**) परामर्श, समालोचना। (**सुसिक्त**) अच्छी तरह सींचा हुआ। (**मत्सर**) ईर्ष्या, किसी का सुख ना देख सकना। (**सुक्त**) अच्छा बोला या कहा हुआ। (**कलुषित**) अप्रसन्न करने वाला, अस्वच्छ। (**हृष्टि**) आनन्द। (**किल्लोल**) हर्ष, किलकारी। (**कल**) अव्यक्त, मधुर ध्वनि। (**काकलि**) मधुर स्वर। (**तमोहरि**) अविद्या, अन्धकार दूर करने वाला। (**चातुर्य**) चतुराई दक्षता।*

93. प्रभु प्राप्ति का उपाय

मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत्।
मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रेरयत्पवमानोऽधि शीर्षतः॥ *अथर्व.१०.२.२६*
यद्वा अथर्वणः शिरोदेव कोशः समुष्जितः।
यत्प्राणो अभिरक्षति शिरो अन्न मथोमनः॥ *अथर्व.१०.२.२७*

913 तर्जः *मधुरमी शुभयात्रयी-913/944*

हृदय योग

संग कर शुभयोग से मन सुघड़! अन्तःकरण का
चिन्तन में यदि शोभा हो, मिले लाभ सही करण का
त्याग कर दे तू सर्वथा चञ्चलता का
और संशय छोड़ देना तू, निर्णिक्त निश्चय का ॥मन सुघड़!॥

अथर्वा, संशय विनाश

संशय जीवन में देता चोट, चलते जीवन को देता रोक
संशय से होती बहुत हानि, संशयालु न बनता निष्कामी
योग सफल हो जाता तभी, संशय विफल जब हो जाता।

पवमान/पवित्रता

साधक तू शौच पे रखना ध्यान, अन्दर बाहर के शौच को जान
स्नानादि बाहर की शुद्धि समझ, अन्दर की लोभ काम क्रोध व मद
अपनी सोच को रखना शौचवत्, रखना जीवन में सदा पवित्रता

मस्तिका दूर्ध्व/मस्तिष्क से

आत्मा तो मन मस्तिष्क से पृथक दोनों का स्वामी संचालक
ब्रह्मरंध्र तक ले जाए प्राण, प्राण वृत्तियों का करे समाधान
देह इन्द्रिय मस्तिष्क से उपर, श्रेयस्कर स्वामी विजय का

प्रेरयत अधिशीर्षत शीर्ष से ऊपर प्रेरित

प्राण और प्राणवृत्तियों को साधो, मन की स्थिरता संयम को राखो
प्राणायाम से जब प्राण वृत्ति रुके, घबरायें नहीं, ना डर के झुकें
ऐसी दशा में है प्राण रक्षक, ध्यान हट जाता है सर्वथा विषय का॥

तत्प्राणो अभिरक्षति/प्राणों का रक्षक

योगाभ्यासी सदा ही रहे सावधान, रखे अन्न खानपान का भी ध्यान
खट्टा मीठा तीता उत्तेजक, सेवन ना करे रहे सदा संयमवान
ना हो माँसाहारी ना हो मदिराचारी, जैसा अन्न वैसा मन बने जीव का
अन्न मन प्राण विज्ञाननन्द कोश, इन पाँचों कोषों के विवेक को सोच
चतुर्कोषों का रक्षक है देव कोष, इसे साधते हैं सदा साधक लोग
ये आनन्द कोष करता प्रभुयोग, यही समय है अकत अमृत का—मन सुघड़

*(**निर्णिक्त**) शुद्ध किया हुआ। (**श्रेयस्कर**) मङ्गलकारी। (**अकत**) सम्पूर्ण। (**सुघड़**) प्रवीण, कुशल, निपुण। (**करण**) कार्य।*

94. तेरी अनन्त कृपा

विद्मा हि त्वा तुविकूर्मि तुविदेष्णं तुवीमघम्। तुविमात्रमवोभिः॥

साम ७२९

353 तर्जः *मधुर यमुनो मनसित मासम (राग-दरबारी) 2708*

तू कितना कृपालु है कृपानिधे! करता दया की वर्षा निरन्तर,
करता रक्षा, तृष्ति, दीप्ति (2), कृपा दया वृद्धि का अभिसर॥ ॥तू कितना॥

दया सिन्धु तू है 'तुविकर्मी', तेरे 'अवस' की कहीं ना कमी,
प्रतिक्षण प्रतिनव पायें कृपायें, हे अनन्तकर्मा! हे अनवर! ॥तू कितना॥

तीन लोक तीनों कालों में, निज हेतु ना कोई भी स्वार्थ,
फिर सकल ब्रह्माण्ड में तेरे, प्रतिक्षण कर्म अखण्ड अप्रतिकर॥ ॥तूकितना॥

जग व्यवस्थापक, स्त्रष्टा धर्ता, ऋतुचक्र का चालन कर्ता,
सरिता वृष्टि तुम्हीं बहाते, नाना पिण्डों के प्रतिजागर॥ ॥तू कितना॥

भौतिक सम्पत्तियों का स्वामी आध्यात्मिक धन का उपदानी
सत्य विवेक धर्म दया-वर्षक सभी दान पाते हैं सत्वर ॥तू कितना॥

सूर्य चन्द्र जल वायु भूमि स्वर्ण रजत रत्न व अग्नि (2)
कहीं अन्त ना ऐश्वर्यों का और सभी धन मिले हैं हितकर॥ ॥तू कितना॥

'तुविमात्र' हुआ निज अवसों से, रक्षा करता प्रवर बलों से (2)
तृप्त करे सबको भोगों से (2) तेरी शरण है जगत चराचर॥ ॥तू कितना॥

अनन्तकर्मा अनन्त दानी अनन्त धन अनन्त परिमाणी (2)
ऋण से ना उऋण हो सके, करूणकरक दय हो करुणाकर॥ ॥तू कितना॥

जीवों का कल्याण हेतु है, तुविदेष्ण तुविमात्र ही तू है और तु विमघ
सबके हेतु, हृदय हृदय करते सब आदर॥ ॥तू कितना॥

(तुविकर्मी) *बहुत कर्मों वाला।* ***(अभिसर)*** *साथी, साथ देने वाला।* ***(तुविदेष्ण)*** *अत्यन्त दानी।* ***(तुविमघ)*** *बहुत धन ऐश्वर्य वाला।* ***(अवस)*** *दान।* ***(प्रतिनव)*** *नित नया।* ***(सत्वर)*** *तुरन्त।* ***(तुवि मात्र)*** *बहुत परिमाण या माप वाला।* ***(उपदानी)*** *भेंट देने वाला।* ***(प्रतिजागर)*** *प्रकाशित करने वाला।* ***(अप्रतिकर)*** *विश्वासी।* ***(चराचर)*** *जड़ और चेतन (जगत)।* ***(प्रवर)*** *श्रेष्ठ।* ***(हितु)*** *हित चाहने वाला।* ***(करक दय)*** *दयामय हाथ।* ***(परिमाणी)*** *यथावत मापदंड वाला।*

95. घोड़ों को प्रसन्न करो और इष्ट जीतो

प्रीणीताश्वान्हितं जयाथ स्वस्तिवाहुं रथमित्कृणुध्वम्।
द्रोणाहावमवतमश्मचक्रमंसव्रकोशं सिञ्चता नृपाणम्॥

ऋ. १०.१०१.७

508 तर्जः *मन करा रे प्रसन्न-1440*

अश्व करो रे प्रसन्न
सर्वसिद्धि के ये कारण॥
॥अश्व करो॥
ये अश्व हैं असाधारण, करें मार्ग को जो व्याप्त (2)

इन्हें भूखा, रथ में ना जोड़ो, हित साध के करो तृप्ति॥
॥अश्व करो॥
चालक उपकरण बिन कोई कार्य न होते सिद्ध (2)
युद्धोपकरण हों ऐसे जिनसे उत्पन्न हो स्वस्ति॥
॥अश्व करो॥
है राज्यशक्ति का मूल मनोराज्य की अवत-प्रजा
ये मूल रक्षा के साधन इन्हें रखो उत्तेजित निति ॥
॥अश्व करो॥
युद्धोपकरण जुटाओ, रथ को सुखधारी बनाओ (2)
उपद्रव होने न पाये, रहे इन्द्रिय प्रजा की शुद्धि॥
॥अश्व करो॥
रक्षा साधन अत्यर्थ, के प्रजा-अवत भी सूखे (2)
उत्तेजित हों 'अश्मचक्र' सर्वविध इन्हें सींचो तुम्हीं॥
॥अश्व करो॥

---

*(**अश्व**) घोड़े, (इन्द्रियां)। (**उपकरण**) साधन। (**अवत**) शोक रहित, खेद रहित। (**निति**) प्रतिदिन, नित, हमेशा। (**उत्तेजित**) प्रोत्साहित। (**उपद्रव**) विद्रोह, राष्ट्रीय अशांति। (**अत्यर्थ**) बहुताय, अत्यधिक। (**अश्मचक्र**) आग्नेय पदार्थ समूह।*

96. पाप की अन्तिम झाँकी

अपघ्नन्पवते सृधोऽप सोमो अराव्णः। गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम्॥

ऋ. ९.६३.२४

686 तर्जः *मनदारील इन्नुम उन किनावुन कुण्डु ता-641*

सा रे ग प नी सा, सा नी प ग रे सा आ ऽ ऽ ऽ

ठाठें मार रहा है, मेरे अन्दर, मस्ती का सागर
उठूँ या बैठूँ, चलूँ या फिरुँ, या कुछ करुँ? दातार ॥ठाठें मार रहा॥

इक हर्ष कारक मस्ती, मानों झूम रही है कश्ती
रस में डूबा, रात दिन मैं
हर कार्य ईश्वर के पवि शरण में प्रथम
रख रख कर अपने शुभ करम
कर लिया, प्रतिदिन स्तुति मन अवलोकन
चिन्तन मननम् निदिध्यासन ॥ठाठें मार रहा॥

सोमरस के घूँट से, पाप-बीज भी भागें
क्या है फिर बात? कैसा झंझावात?
अभिमान काम क्रोध की आती हैं झाँकियाँ
धर्म का इक अस्थिर आवरण
रिपु आक्रमण निर्घण निर्मम अधमाधम
अवनत अवगुण अनुपासन ॥ठाठें मार रहा॥

शायद ये अन्तिम प्रवृत्ति, मिटने सदा ही चली
मैं 'अदेवयु', क्योंकर बनूँ
अदेवयु का कर लूँ आखिरी दर्शन
मार्ग दिखा दे अद्यतन
हे भगवन्! मृदुमन मधुहन् सोमामृतम्
मनहर हृद्गत हृदयंगम ॥ठाठें मार रहा॥

---

*(**पवि**) पवित्र। (**अवलोकन**) खोज, अनुसंधान। (**झंझावात**) तूफान। (**रिपु**) शत्रु। (**निर्घण**) अयोग्य, निर्दय। (**निर्मम**) क्रूर। (**अधमाधम**) बुरे से बुरा। (**अवनत**) पतित गिरा हुआ। (**अनुपासन**) उपासना रहित। (**अदेवयु**) पाप की ओर पापी (**अद्यतन**) नया। (**मृदुमन**) कोमल मन वाला। (**मधुहन्**) सर्वव्यापक (विष्णु)। (**सोमामृत**) सोम से सना अमृत। (**हृद्गत**) आन्तरिक, प्रिय, चित्त पर फैल हुआ। (**हृदयंगम**) मनोहर, मन में बैठा हुआ।*

97. मन की शक्तियों का आवाहन

मनसे॒ चेतसे धि॒य आकू॒तय उ॒त चित्तये।
म॒त्यै श्रुताय॒ चक्षये वि॒धेम ह॒विषा व॒यम्॥ *अथर्व. ६.४१.१*

768 तर्जः *मन में तुट्टा चिनुंगीदाने राग भूपाली-1924*

मन चन्द्रमा सा है जाने, इसे सौम्य गुणवाला मानें
यही हर्ष दे, यही पीड़ा दे, इसे मनन शक्ति द्वारा थामें॥
॥मन चंद्रमा॥

है परमेश्वर भी पूर्ण चन्द्र, गुण कर्मस्वभाव से है वो मन्द्र
मनरूप समुद्र में भरते तरंग, आह्लाद का करते परिवर्धन (2)
मन की हवि से हम प्रार्थी बन, करें याचना, करें प्रार्थना
आयें शरण मन-शक्ति पाने॥
॥मन चन्द्रमा॥

प्रभु हममे मनन शक्ति भर दो, जिससे हम शास्त्रिय वचन सुनें
इन वचनों को सुनकर भगवन्, हम तदनुसार ही करें मनन
चित्त जन्य शक्ति पा कर के (2), हम हों समृद्ध और परिवृद्ध,
ना देना पशु-वृत्ति भानें॥
॥मन चंद्रमा॥

फिर ध्यान धारणा की शक्ति, इस मन में भर उसे प्रखर करो
उपयोगी ज्ञान को देर तलक, मम हृदय में धारित रखो
बल दृढ़ संकल्प का दान करो(2), दीक्षित हो व्रत जिसमें हो श्रत्
चित्ति का बल प्रभु, दो आने॥
॥मन चंद्रमा॥

हमें श्रोत जन्य और नेत्र जन्य, के ज्ञान का दो सर्वथा उत्कर्ष
जिससे जीवन होवे उन्नत, और श्रेष्ठ पायें तुमसे आदर्श
हे वृद्ध चन्द्र! हे दिव्य मन्द्र! (2), बन मननशील हो सत्यसंध
मन चन्द्र के सम दो चमकाने॥
॥मन चंद्रमा॥

(सत्यसंध) *सत्यवादी।*

98. दिव्य वर्षायें

सिंहः पावकाः प्रतता अभूवन्त्स्वस्ति नः पिपृहि पारमासाम् ।
इन्द्र त्वं रथिरः पाहि नो रिषो मक्षूमक्षू कृणुहि गोजितो नः॥

ऋ. ३.३१.२०

448 तर्जः *मनमे मनमे तड़मारम मन मे 1323*

बरसे बरसे, मेघा बरसे
ताल तलैया, सरोवर सरसे
प्रचण्ड ताप से तपित हुए थे
तरसी-धरणी अब सरसाई, हे आनन्द वर्षे!
जल फैला जीवनदायी, मस्ती मनभाये॥

॥बरसे बरसे॥

बाह्य वर्षायें सिर्फ तुम नहीं बरसाते
आन्तरिक वर्षाओं से भी मन सरसाते
उग्र पाप के तापों से सिर्फ तुम ही बचाते
दयित पात्र तुम अपना हम भक्तों को बनाते
सद्गुणों की वर्षा से स्नात हो रहा हृदय
बरसी फुहार अन्तस्ताप हो गये विलय
बुद्धि आत्मा मन इन्द्रिय हो रही हैं सिक्त
आनन्दधन तेरी वर्षा ने किया हमें परितृप्त
ये दिव्य वर्षा, चरमोत्कर्ष पे,
पहुँचा के, हमें दर्श दे दे
बरसे ये बरसे, भूरि भूरि बरसे॥

॥बरसे बरसे॥

इधर मैं तुम्हारे द्वारा गुणानन्द वर्षा से
बार बार पुलकित मन से बैठा निश्चिन्तता से
उधर अघशंस-सेना घेरती अधमता से
कर रही हिंसक तैयारी अपनी वार खलता से
हे इन्द्र हमको तुम ही बचा सकोगे
रथ हीन अभारी हम, तुम वीर अनोखे
बाण अघ के अगणित कैसे सहेंगे?
तेरे स्थिर रथ पे बैठ शरण तेरी लेंगे,

पाप जनित हिंसा से उबार लो
विजित चक्रवर्ती का अनघ स्वराज्य दो
बरसे रक्षण हम पर बरसे॥ ॥बरसे बरसे॥

आन्तरिक साम्राज्य में यदि विद्रोह मच गया हो
बाह्य चक्रवर्ती बनके क्यों कर भला हो,
आन्तरिक मनोरथ-सिद्धि 'इन्द्र' आके तुम करो
उच्चतर आध्यात्म-क्षेत्र पे विजय मेरे हस्त धरो
उच्चतम सुक्षेत्र हृदय में निर्वासित रहो
पाप पापियों को हमसे दूर करो,
दुवन द्वेषियों से हे इन्द्र! बचा लो,
दिव्य शक्ति-दाता शक्ति देके सम्भालो
पूर्ण करो हम सबकी प्रार्थना,
अब हम ना चाहें अघ-यातना
बरसा दे आत्मशक्ति, हार्दिक स्नेह दे॥
॥बरसे बरसे॥

---

*(**धरणी**) धरती। (**दयित**) प्यारा। (**स्नात**) नहाया हुआ। (**अन्तस्ताप**) आन्तरिक दुख। (**भूरि-भूरि**) अधिक। (**अनघ**) बिन पाप का। (**अघ**) पाप। (**सिक्त**) भीगा हुआ। (**परितृप्त**) अच्छी तरह संतुष्ट। (**चरमोत्कर्ष**) अत्यन्त ऊँचाई तक। (**गुणानन्द**) गुणों से भरा हुआ आनन्द। (**पुल्कित**) खिला हुआ। (**अधशंस**) हिंसक पाप की। (**खलता**) नीचता।*

99. पृथ्वी धारक

सत्यं बृहद्बृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥१॥

अथर्वः १२.१.१

438 तर्जः *मनलो भले मन मोहले 1472*

वसुधा हमें उन्नत करे, उसके ही गुण धारण करें
सङ्कल्प अभिसम्पन्न करें, भूमि सा धैर्य वहन करें
॥वसुधा॥

भूमि में गुण मिले सत्य का (2), सत्य में है ब्रह्माण्ड स्थित
भूमि भी सत्य पे आश्रित, बन सत्यशील भ्रमण करे॥
॥वसुधा॥

सत्याचरण तेजस्विता, सङ्कल्प दृढ़ निस्वार्थता
परोपकारिणी है व्रतचर्या, षट्गुण स्वतः धारण करे॥
॥वसुधा॥

यही प्रार्थना करते हैं हम, विस्तृत विशुद्ध बनाओ तुम
गुण-साधनाओं द्वारा हम, तुझ पर हृदय-वारन करें॥
॥वसुधा॥

तादात्म्य राष्ट्र से हम करें, उज्जवल बनायें भविष्य हम
सुविशाल होवे उपासना, तुझे बार-बार नमन करें॥
॥वसुधा॥

तेरी गोद में जीवन मरण, रहना है तब तक सत्यसन्ध
हे मातृभूमि! हे भगवती!, अपनाने का तुझे प्रण करें॥
॥वसुधा॥

तेरे सद्गुणों को धारकर, करते रहें सच्चा पूजन
दृढ़ भूत की चट्टान पर, निज भव्य उत्तमोत्तम करें।
॥वसुधा॥

---

*(**वसुधा**) पृथ्वी। (**धैर्य**) धीरज। (**व्रतचर्या**) व्रत पर चलना। (**अभीसम्पन्न**) पूर्ण रूप में सफल। (**विस्तृत**) विशाल। (**वारन**) न्योछावर। (**तादात्म्य**) तत्स्वरूपता। (**भव्य**) भविष्य। (**सत्यसन्ध**) सत्यवादी।*

100. दूरित दूर करके ऐश्वर्य प्रदान कीजिए

अति॒ निहो॒ अति॒ सृधोत्यचि॒त्तिरति॒ द्विषः।
विश्वा॒ ह्यऽग्ने दुरि॒ता तर॒ त्वमथा॒स्मभ्यसहवी॑रं र॒यिं दाः॥ *अथर्व. २.६.५*

470 तर्जः *मनसी मनसी कुयता मिन्मे-1096*

बनते बनते बात बिगड़ती आता स्वार्थ जब मन में
किन्तु पाके प्रभु-शरण तब मन जाता है सद्गुण में
सद्गुण ने ही सूचात्मा को डाला ईश के अनुगुण में
फैलाता मन सद्गुणों को प्रेम श्रद्धा से जन जन में॥
॥बनते, बनते बनते॥

हम विषय भोगों में फँसे हैं, जिसने हमें विनष्ट किया है
इन दुरिष्ठ-दुरितों से बचाओ, तुझको अपना आपा दिया है
असत् अनत अरस अनय इन दुर्गुणों से बचा
विदुर विनत विपुल विमल विद्रात्मा में सजा
शनैः-शनैः शुभप्रद बनें॥ ॥बनते, बनते बनते॥

अनगिनत कामादि बढ़ाये रोग शारीरिक हमको सताये,
हो रहे कर्तव्य विमुख, हम क्यों न अविद्या हर ली जाये?
क्यों पिण्ड नहीं छोड़ते ये द्वेष, भाई को भाई लड़ाये
ये आपका पुनीत जगत, दूषित हम करते आये
उच्छिष्ट तजें, उत्कृष्ट बनें। ॥बनते, बनते बनते॥

दुर्व्यसन दुष्कर्म दुराग्रह कब से मन में घर बनाये
इन्हें बेघर करो प्रभु शुद्ध आचरण ही मन को भाये
पावक प्रतिभा बनाओ ऐश्वर्य ऐसे दिलाओ
दूषित बने ना आत्मा सन्मार्ग-साधक बनाओ
सुनो प्रार्थना, हे कृपानिधे! ॥बनते, बनते बनते॥

हम नहीं चाहें के अकेले ऐश्वर्य अधिकारी बने
वीर, कुटुम्ब समाज राष्ट्रजन सब इसमें सहभागी बने
रहे सुखद ये सारा विश्व मिल-जुल हाथ बटाये
मधुर-मञ्जुल मिलें ये मन, प्रेम संदेश फैलायें॥
मिल के चलें संगठन बनायें॥ ॥बनते, बनते बनते॥

---

*(**सूचात्मा**) पवित्र आत्मा। (**अनुगुण**) समान गुण वाला। (**दुरिष्ठ**) निकृष्ठ। (**दुरित**) पाप, दुष्कर्म। (**प्रतिभा**) चातुर्य। (**मञ्जुल**) सुन्दर प्यारी। (**असत्**) झूठा। (**अनत**) घमंडी। (**अरस**) रसहीन। (**अनय**) दुराचरण। (**उच्छिष्ट**) अपवित्र। (**विदुर**) बुद्धिमान, पण्डित। (**विनत**) विनम्र, झुका हुआ। (**विपुल**) विशाल, विस्तृत। (**विमल**) शुद्ध, पवित्र।*

101. धनी दरिद्र दोनों उसके याचक

अस्य शासुरुभयासः सचन्ते हविष्मन्त उशिजो ये च मर्ताः।
दिवश्चि त्पूर्वो न्यसादि होतापृच्छ्यो विश्वपतिर्विक्षु वेधाः॥ *ऋ. १.६०.२*

703 तर्जः *मन्दार पू मूली कादिल तईमासम वन्नल्लो-096/238*

संसार में नहीं कोई धनवान, तृप्त तृष्णा से जो होय
होते हुए भी मालोमिल्कत अतिरिक्त लालसा होय
अपने से ज्यादा धनी, देख जलते, ईश्वर से धनों की याचना करते
और उससे माँगने में लाज ना कोय ॥संसार में॥

जितना बिछ गया लालसा का जाल, उतना ही समझो वो कंगाल
धनी हो, हो दरिद्र, त्यागी या कामी, सबको देता वो ही स्वामी
त्यागी धनी दरिद्र, या कामी जो भी चाहे
देता है जगदीश्वर, सबका सौभाग्य बनाये
सबका अधिपति और अधिष्ठाता
एक मात्र ईश्वर है उसके बिना ना कोय॥ ॥संसार में॥

जिससे सब पदार्थ उत्पन्न होते, उत्पन्न होकर जिसमें हैं जीते
मर के भी फिर कहाँ किसमें जाते, यही तो सबको वेद बताते
इसको जानना ही वही ज्ञान ब्रह्म है
राजा है वो अनादि लेता ना जन्म है
सृष्टि सूर्य से पहले है ईश्वर
जीवों में परमाणुओं में नित्य ही होय॥ ॥संसार में॥

प्रभु तू विद्यमान है जब नित्य, देने का तुझमें है औचित्य
हर कोई तुझसे हर पल माँगते, और हमारी सुध तुम ले लेते
जिस धन को तुम मानो के सर्वश्रेष्ठ है
देदे हमको स्वामी तू सबसे ज्येष्ठ है
पूजित धन से भर दे झोली
बैठे चरणों में कब से आस संजोय ॥संसार में॥

(औचित्य) सच्चाई, उपयुक्तता। (ज्येष्ठ) बड़ा। (अधिष्ठाता) किसी कार्य का निरीक्षण करने वाला, राजा ईश्वर।

102. आर्य और दस्यु की पहचान

वि जानीह्यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्ध्या शासदव्रतान्।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वत्ता ते सधमादेषु चाकन॥ऋ. *१.५१.८*

552 तर्जः *मयतमी पाटिय युम श्रुति मयुरुतम–1780*

हे इन्द्र राजन् निज साम्राज्य का यदि तू है अधिनायक।
आर्य-दस्यु का भेद समझ कर खुद को बना दे लायक॥
आर्य का हृदय तो सरल ही होगा, दस्यू का हृदय है कपटी
सेवाव्रत से हीन है दस्यु आर्य की समचित्त है करनी
आर्य-दस्यु का विवेक कर के राष्ट्र सेवक बनके हो पावक
॥हे इन्द्र राजन्॥

हे राष्ट्रनायक बन शक्तिशाली, सैन्य शक्ति अपनी बढ़ा (2)
प्रभावी बन के राज्य कोष की शक्ति में भर प्रकर प्रभा।
राज्य-शत्रु का बन विनाशक और प्रजा का सुखदायक।
॥हे इन्द्र राजन्॥

तेरे राज्य के यजमानों का प्रेरणा दायक स्त्रोत बन (2)
राष्ट्र भक्त और धर्मपरायण जनों का बन सहचरी स्वयं
जिससे स्वार्थ-वृत्ति वाले जन सिर ना उठायेंगे नाहक॥
॥हे इन्द्र राजन्॥

अपना राष्ट्र बना चिरविजयी चिर स्थायी चिर प्रशंसित (2)
प्रजा जनों का रच के उत्सव कर संगोष्ठियाँ आयोजित,
स्तुत्य बनेगा प्रजा जनों का, प्रजा भी पायेगी राहत॥
॥हे इन्द्र राजन्॥

हे आत्मन् शत्रुघ्न इन्द्र शरीर राष्ट्र का तू राजन् (2)
तेरे अन्तस् के साम्राज्य में दस्यु विचार भी हैं आसन्न
इन दस्युओं का बन विध्वंसक आर्य विचार कर जागृत॥
॥हे इन्द्र राजन्॥

---

*(**अधिनायक**) मालिक, मुखिया, परमेश्वर। (**दस्यु**) राक्षस। (**समचित्त**) सम्यक् अवस्था का चित्त। (**प्रकर**) खिला हुआ। (**सहचारी**) साथी, सेवक। (**आसन्न**) समीप लगा हुआ, निकटस्थ। (**विध्वंसक**) नाश करने वाला।*

103. आओ हम लौटें

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासतृप उक्थशासश्चरन्ति॥

ऋ. १०.८२.७ यजु. १७/३१

384 तर्जः *मयनी ममतल भार्याभितकलू-राग कलावती 1463*

आओ लौटें अंतःकरण में, पावें आत्मा की आत्मा को
ध्यान करें निज अन्तर्मन में॥ ॥आओ लौटें॥
जिसने ये सब भुवन बनाये पर आश्चर्य उसे जान न पाये
पिता है संग फिर क्यों है अन्तर(2) व्याकुल हो क्यों फिरे अकुलन में॥
॥आओ लौटें॥
प्रभु सा निकट ना अन्य कोई है (2) आत्मवसु परमात्मा ही है (2)
फिर भी प्रभु क्यों दूर है हमसे (2) क्योंकि लगे हम स्व-तर्पण में॥
॥आओ लौटें॥
परदा प्रकृति का है मध्य में, नज़र ना आता पिता सान्निध्य में (2)
तमोगुणी अज्ञान का कोहरा (2) छाया मन के दर्पण में॥
॥आओ लौटें॥
शब्दाडम्बर आवृत अपना जिसमें (2) जल्पना की है जिसमें कल्पना।
रजोगुणी दूजा ये परदा (2) दूर कराये परमानन्द से॥
॥आओ लौटें॥
जितनी धुन्ध है उतनी दूरी (2) हुई ना दर्शन-लिप्सा पूरी
असुतृप होकर विचर रहे हैं खान पान में जुटे तन मन से
॥आओ लौटें॥
सूक्ष्म प्राण में रम गई इच्छा (2) इक पूरी दूजे की लिप्सा
जल्पावृत से लोग हैं आवृत (2) अपना राग अलापें जन में॥
॥आओ लौटें॥
लेखक वक्ता या शास्त्रार्थी (2) शब्द जाल के हैं अभ्यासी
प्रभु का केतन दिखा सके ना, रहते हैं खुद अकेतन में॥
॥आओ लौटें॥

---

*(**अकुलन**) अभाव, कमी। (**जल्पना**) निरर्थक शब्दजाल। (**स्वतर्पण**) खुद की तृप्ति। (**सान्निध्य**) समीपता, सामिप्य। (**आवृत**) फैला हुआ। (**शब्दाडम्बर**) शब्दों का आडम्बर। (**लिप्सा**) अभिलाषा, इच्छा। (**असुतृप**) प्राण तृप्ति में लगे हुए। (**केतन**) स्थान, घर। (**अकेतन**) बेघर। (**जल्पावृत**) डींगो से घिरा हुआ।*

104. यज्ञ और मन के लिये

ते वो॑ हृ॒दे मन॑से सन्तु य॒ज्ञा जुष्टा॑सो अ॒द्य घृ॒तनि॑र्णिजो गुः।
प्र वः॑ सु॒तासो॑ हरयन्त पू॒र्णाः क्रत्वे॒ दक्षा॑य हर्षयन्तः पी॒ताः॥

ऋ. ४.३७.२

751 तर्जः *मयनी पोई न्यान मयनी पोई–1888*

यज्ञ हैं कई और सब हैं सही
पर प्रीति श्रद्धा बिन यज्ञ नहीं
लोकोपकार के नित शुभ कर्म ही
मन और हृदय को करते पवि॥

यज्ञ हैं कई...

जिनके मन में विषय वासना की जले आग बड़ी
जिससे बढ़े विपदा, दुःख के बादर भी घिरते कई
ऐसे इन, लोगों को, करें सावधान हम, यज्ञ ये यही॥

यज्ञ हैं कई...

ऐसे भले, कार्यों में विध्न बहुत ही आते हैं
किन्तु जो, हैं धीर, निज क्रतुओं में दक्षता लाते हैं
वो विचलित नहीं होते, ऐसे याज्ञिक होते हैं यति॥

यज्ञ हैं कई...

जैसे इस, आगी से, मैंने खुद को बचाया संयम से
ऐसे ही, निज यत्नों से, अन्धकार हटाऊँ, जन-मन से
ये हरी-भरी, शुभभावना जागे मेरे मन में कहीं ना कहीं॥

यज्ञ हैं कई...

कैसी है, बात अद्‌भुत! पहले साधक यज्ञ-राह पर था
उनको जब, किया पूरा, तो वो लोगों की चाह पर था
ऐ मनुष्यों! ज़रा सोचो, वैदिक आध्यात्मिक मर्म यही॥

यज्ञ हैं कई...

---

*(**दक्षता**) निपुणता। (**यति**) योगी, सन्यासी, त्यागी।*

105. इन्द्र के महल को

अपन्धन्पवते मृधोप सोमो अराव्णुः । गच्छन्निद्रस्य निष्कृतम्॥

साम. ५१०,१२१३ ऋ. ९.६१.२५

750 तर्जः *मयनी पोई, न्यान मयनी पोई - 1888*

जान मेरी, ऐ सोम सरि, निर्मल नीरज, पद पा ही गई
किरन बनी, तू लहर बनी, तू बनी बदली और बरस गई
इन्द्र की आँखें, देखें तुझको बन प्रभु-प्यारी, शिशु सी नई॥
जान मेरी...

सम्पत्तियों का घर है, ये विश्व महेन्द्र का है अतिदान,
सम्राटों, के सम्राट का, है सजा हुआ ये महल महान,
पर इन्द्र का, प्यारा पुत, गया भटक, खोज उसकी है अविराम॥
जान मेरी...

खुलते नहीं, हृदय कई, कर्मों की कृपणता करे व्यवधान
भाई का, भाई शत्रु, भाषा-वाणी का नहीं है सम्मान
ना गले से वह गले मिलें, पिता-पुत्र के रिश्ते बने अनजान॥
जान मेरी...

संकोच है, है बाधा, भक्ति भाव की चाह ना उदारता
किमि पायें, परमेश्वर, कृपण भक्त ना जाने प्रभु-पात्रता
डर है उसे, गँवा न दे, भरी पाप की पोटली का सामान॥
जान मेरी...

मेरे मन! चल शिशु बन, चल पिता के घर होवें पवमान
आर्द्र होने, बह जाने, ले विनयशीलता का आदान
बन बाढ़, आँसुओं की, छल खल मल का कर दे अवसान॥

---

*(**सरि**) नदी। (**नीरज**) कमल। (**अतिदान**) अत्यन्तदान। (**अविराम**) निरन्तर। (**कृपणता**) कंजूसी। (**व्यवधान**) रूकावट। (**किमि**) कैसे? किस प्रकार। (**पवमान**) अत्यन्त पवित्र। (**आर्द्र**) भीगा हुआ। (**आदान**) ग्रहण। (**अवसान**) समाप्ति।*

106. साथी बनो

त्वां जना ममसत्येष्विन्द्र संतस्थाना विहूवयन्ते समीके।
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः॥

ऋ.१०.४२.४ अथ : २०/८९/४

931 तर्जः *मयसुन्नदी उन्नदी मिट्टन मुक्ती मुट्टु-701*

मन उन्नत्ति करके रह सुधी
बरसेगी प्रभु-कृपा
निज आत्म त्याग से ही
खुद को पराक्रमी बना।
चल के सत्य पथ पे
शुभ कर्म कमा
मित्रता इन्द्र की पा ले
वो ही हैं सखा ॥मन कर उन्नति॥

सिर्फ सत्य को रटना, लक्ष्य तक ना पहुँचाना
कह दो इसका लाभ है क्या, ये समझाना
हाथ में हवि को लेकर, उसे त्याग-रूप देकर
सत्यरूप का तुम भी ले लो नशा
सत्य हेतु नित प्रति दिन बाँधे रखता है कफन
जीवन के अंत तक जो करता है सत्य सवन
उसने ही जीवन को
रसमय विधि से जीया॥ ॥मन कर उन्नति॥

इन्द्र की जो मित्रता चाहो तो हविष्यमान हो जाओ
हविष्यमान हो के करो सोम सवन
विचर के ना सत्य में, जिन्हें ढोंग करना है
उनका छोड़ दो संग, ना करो स्मरण
सत्य का रस पाने की जिसमें क्षरित क्षमता है
सचमुच इन्द्र से परम सौभाग्य उनको मिलता है।
ना असत्य पे अड़ो।
सत्य में ही है भला॥ ॥मन कर उन्नति॥

---

*(**सुधी**) बुद्धिमान। (**हविष्यमान**) उत्तम सामर्थ्यवान। (**क्षारित**) बहते रहना। (**सवन**) यज्ञ।*

107. यात्रा सफल हो

अवा नो वाजयुं रथं सुकरं ते किमित्परि। अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृधि॥

ऋ. ८.८०.६

358 तर्जः *मयिलाय हो मयिलाय परन्नुवाय मळयिल-388*

कई बार हम चाहते, वाज रथ यूँ आगे बढ़ता जाए
धन बल ऐश्वर्यों की न्यूनता कभी भी ना आए।
है प्रभु तुमसे प्रार्थना, तुम इस रथ की रक्षा करो
वरदान मिलता रहे तुमसे, हमपे ऐसी कृपा कर दो
जितना तुम से वाज मिले, उतने ही उन्नत हों
तेरा संग किया करते ही तद्वत कर्मठ हों॥

कई बार...

जीवन की इस दौड़ में हमको उत्तरोत्तर बढ़ना है भगवन्(2)
जब तक लक्ष्य को पा न सकें हम (2)
प्रभु हमें बल दे, तेरी शरण पड़े॥

कई बार...

हर ले दुरित बाधायें, प्रभा दे श्रेष्ठ विजेता हमें बना दे (2)
आसुरी वृत्तियाँ रहें पराजित
प्रभु हमें बल दे तेरी शरण पड़े॥

कई बार...

ये रथ वाज का तीरथ कर दे, इस जीवन को यज्ञ से भर दे (2)
वाजयु-रथ ले चलें सुपथ पे(2)
प्रभु हमें बल दे तेरी शरण पड़े॥

कई बार...

तेरे लिए प्रभु सब कुछ संभव और परिपूर्ण है तेरा अनुभव (2)
वाज से तेरे क्यों वञ्चित हों? (2)
प्रभु हमें बल दे तेरी शरण पड़े॥

कई बार...

---

*(**वाज**) धन ऐश्वर्य और बल। (**दुरित**) पाप। (**तदवत्**) उसी प्रकार। (**कर्मठ**) उद्यमी, मेहनती।*

108. भगवान का भला रूप

यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे।
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम्॥

साम. ३५ ऋ. ६.४८.१

710 तर्जः *मरनित्यु मिन्दिनो मनसिल तुडुम्बुम्बो-584*

जब से रहस्य जाना, यज्ञ का हमने, जीवन बना यज्ञमय पावन
यूँ तो अन्जाने में हर अङ्ग है याज्ञिक
कर रहे हैं मिलजुल कर संगतिकरण
मन देह इन्द्रियाँ हैं अग्नि-अर्पण॥
श्वास लेना आँख झपकना, रुधिर प्रवाहित होना,
यह सब तो छोटे-छोटे नित यज्ञ हैं।
अंग-प्रत्यंग मिलकर, क्रियाओं में भाग लेते,
यज्ञ द्वारा अभिलक्षित ये अनवद्य हैं,
मन देह इन्द्रियाँ यज्ञ हेतु भाग लेके, (2) कहते इदमग्नये-इदन्नमम्॥
॥जब से रहस्य॥

सबसे बड़ा याग है, विश्व का याग,
परमेश्वर का जिसमें एकछत्र राज है,
इतने बड़े विश्व में, गिनती क्या मनुष्य की?
कितना मनुष्य का अल्पभाग है,
विश्व याग-आग में कोई जाने ना जाने (2)
नन्हीं आहुति का मूल्य जाने भगवन्
॥जब से रहस्य॥

प्रभु ने ही यज्ञ रचाया यजमान बनके,
विश्व-याग-देवता हम हैं इस यज्ञ के।
प्रभु चाहते देवता आहुति देवें यज्ञ में,
इसीलिए विश्व-यज्ञ रचा है सर्वज्ञ ने।
यज्ञ में किया गया उपदान मूल्य रखता है (2)
भला करता है प्रभु-भक्त का भजन
॥जब से रहस्य॥

सफल होगा आहुति से, प्रभु का अखण्ड यज्ञ
भावनाओं में होगा व्यवहार सत्य
वाचिक मानसिक कायिक आहुतियाँ यज्ञमय
बना देंगे अग्निदेव कल्याणकारी नित्य
व्यष्टि-समष्टि में हवियों की चिर चमक (2)
जातवेदस् अग्नि बने मित्र मनभावन॥

॥जब से रहस्य॥

आओ उठायें ज्वाला, जातवेदस् अग्नि की,
गाते जायें स्तुतियाँ देव अग्रणी की
वाणी आचरण विचार से बन जायें उज्ज्वल,
मनहर सुगन्ध फैले इस अग्नि की
कर देवें पूर्णाहुत हविरूप जीवन को (2)
जागे देव पूजा दान संगतिकरण॥

॥जब से रहस्य॥

---

*(**संगतिकरण**) परस्पर मेल करना। (**रूधिर**) रक्त, खून। (**इदन्नमम**) यह मेरा नहीं है। (**सर्वज्ञ**) सब कुछ जानने वाला। (**उपदान**) भेंट। (**वाचिक**) वाणी सम्बन्धी। (**मानसिक**) मन सम्बन्धी। (**कायिक**) शरीर सम्बन्धी। (**व्यष्टि**) समाज में से प्रत्येक। (**समष्टि**) समस्त, सबका समूह। (**जातवेदस**) जीवन की अग्नि। (**अग्रणी**) आगे ले जाने वाला। (**हवि**) आहुति।*

109. संसार का उत्पादक ही सुकर्मा

स इत्स्वप॒ा भुवनेष्वास॒ य इमे द्यावापृथि॒वी ज॒जान।
उ॒र्वी ग॑भी॒रे रज॑सी सु॒मेके॑ अव॒ंशे धीर॒ः शच्या॒ समेरत्॥

ऋ. ४.५६.३

60 तर्जः *मर्जी तुमची मोडू नको रे मना-417*

प्रभु है सुकर्मी अधर में रचा संसार, प्रभु सबका आधार॥
नहीं प्रयोजन निज ईश्वर का, जीव हेतु उद्धार
॥प्रभु सबका आधार॥
सूर्य चन्द्र ग्रह उपग्रह तारों का प्रभु अजय खिलाड़ी
शक्तिमान परमेश्वर ने ही शक्तिरूप गति डाली
ऐसी गति ना डाल सके कोई प्रभु बिन सब लाचार
॥प्रभु सबका आधार॥
ज्ञान शक्ति और क्रिया स्वाभाविक प्रभु सदा निष्कामी
जनन है उत्तम कर्म प्रभु का निर्माता वो सुजानी
पर उपकार तू सीख प्रभु से, खोल अनुकरण द्वार
॥प्रभु सबका आधार॥
उत्तम कर्मनिष्ठ ईश्वर ने सृष्टि रची हितकारी
इसी तत्व को हृदयङ्गम कर तदनुसार तैयारी
कर्मशील उत्पन्न कर संतति, बने न वो भूभार
॥प्रभु सबका आधार॥

---

*(**सुकर्मा**) पवित्र कर्मकर्ता। (**हृदयंगम**) संगत, मन को जँचा। (**अनुकरण**) अनुरुपता, नकल, करना। (**भूभार**) पृथ्वी पर बोझ। (**जनन**) पेदा कराना, उत्पत्ति।*

110. वह सर्वहितकारी है

तच्चक्षुर्देववहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम।

शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥२४॥

यजुः ३६/२४ ऋ.७.६६.१६

257 तर्जः *मलमली तारुण्य माझे तू पहाटे-515*

जग की आँख है अंशुमाली, शुक्र ज्योति में विभासे(2)
ज्योति बन के हित करे प्रभु (2) प्रेरणाओं से जगाते॥
॥जग की॥

निज प्रकाश से सर्वजगत को देता दर्शन-शक्ति वो (2)
वो है परम विशुद्ध चक्षु, आदिकाल से सदा प्रभासे॥
॥जग की॥

हित करे उन मानवों का, जिनमें देव स्वभाव उत्तम (2)
ज्ञान और विज्ञान देकर, निज प्रकाश में ढालते॥
॥जग की॥

आओ अन्तर्नेत्रों से इस सूर्य को अनुभव करें (2)
दिव्य सूर्य का ज्ञान ले हम सौ बरस जीया करें॥
॥जग की॥

सौ बरस तक प्रभु-कृपा से प्राणों को धारण करें (2)
सौ बरस तक आचरण हों शुद्धतम व्यवहार के॥
॥जग की॥

आत्मदृष्टा के ही सम्मुख सौ बरस जीवें सुनें(2)
सौ बरस होवे प्रवचन, हों अदीन हर प्रकार से॥
॥जग की॥

हो सबल यदि देह आत्मा, आयु सौ से अधिक जियें (2)
देख सुन बोलें जियें हम, हों वित्तपति प्रयास से॥
॥जग की॥

---

*(**अंशुमाली**) सूर्य। (**शुक्रज्योति**) अग्नि स्वरूप ज्योति। (**विभास**) चमक। (**अदीन**) धनी, उदार, दीनता रहित। (**वित्तपति**) कुबेर।*

111. गाँठ खोल

ग्रन्थिं न वि ष्य ग्रथितं पुनान ऋजुं च गातुं वृजिनं च सोम।
अत्यो न क्रदो हरिरा सृजानो मयाँ देव धन्व पस्त्यावान्॥

ऋ. ९.९७.१८

70 तर्ज : *मला काय झाले कळेना-495*

हृदय गांठ खोला करोना!
पापों के बन्धन से मुक्ति दो भगवन्
दुःख कष्ट क्लेश हरोना!

॥हृदय गांठ॥

खुल जायें गाठें इक इक हृदय की
तो छिन्नभिन्न संशय होवें प्रभुजी
कर्म शिथिल होवें बन्धन के सारे
ज्ञान हृदय में भरो ना!

॥हृदय गांठ॥

हर लो कुटिलता दे दो सरलता
सत्ज्ञान दे दो कि पायें सफलता
ऋजु मार्ग प्यारा उसी का सहारा
ऋतवती हमको करो ना!

॥हृदय गांठ॥

है प्रार्थना तुझसे ऐ मेरे भगवन्!
हूँ सन्तान तेरी मैं तेरे समर्पण
मुझको पिता अपनी बाँहों में ले लो
दौड़ के आगे बढ़ो ना!

॥हृदय गांठ॥

---

*(**ऋजु**) सीधा, सरल, अनुकूल। (**कुटिलता**) टेढ़ापन, छल, दुष्टता। (**संशय**) शंका, भ्रम।*

112. तेरे कान चारों ओर से सुनते हैं

उत त्वाबधिरं वयं श्रुतकर्णं सन्तमूतये। दूरादिह हवामहे॥

ऋ. ८.४५.१७

65 तर्जः *मला तुझे मनोगत मला कभी कळेल का? - 424*

कही जिसे मनोव्यथा घटा नहीं दुःख बढ़ा
बिना कान के तू सुनता देता मिटा मन की व्यथा॥

जब सुनाया दुःख ये जग को, सोचा बाँट के होगा कम
ये भी अनुभव उलटा निकला दुःख से हो गई आँखें नम
बधिर होंगे सुनने वाले ना ही मिली दुःख की दवा।
॥कही जिसे॥

पतित करती कामनायें व्यथित करती विफलतायें
हुआ विकल कल ना मिला पाया न प्रकाश तेरा
जग की ज्वालाओं से घिरकर हुआ दूर तुझसे पिता
॥कही जिसे॥

काम क्रोध लोभ मोह अहंकार में छला गया हूँ
कैसे प्रभु छुटकारा पाऊँ शरण तेरी चाहता हूँ
नाना राक्षस राह रोकें प्रभु मुझको बचा
॥कही जिसे॥

ना हूँ केवल मैं सताया और बहुत से लोग हैं
ना सुनें जो मेरी सबकी सुन प्रभु अनुरोध है।
तेरे द्वार मेरे लिये क्यों नहीं खोलता
॥कही जिसे॥

तू ही रक्षक बन्धु मेरा, हे प्रभु! सर्वज्ञ तू
जैसा हूँ प्रभु मैं हूँ तेरा, शरण दे अल्पज्ञ हूँ
जाएगा ना कुछ भी तेरा, जीवन सँवरेगा मेरा
॥कही जिसे॥

(बधिर) *बहरा।* ***(पतित)*** *गिरावट।* ***(कल)*** *चैन।* ***(विकल)*** *बेचैन, व्यग्र।* ***(अनुरोध)*** *प्रार्थना।* ***(अल्पज्ञ)*** *अज्ञानी, कम जानने वाला।* ***(सर्वज्ञ)*** *सब कुछ जानने वाला, क्रांतदर्शी।*

113. हम सत्यवादियों की शरण में रहें

ऋतवान ऋतजाता ऋतावृधो घोरासो अनृतद्विषः।
तेषा वः सुम्ने सुच्छर्दिष्टमे नरः स्याम ये च सूरयः॥ *ऋ. ७.६६.१३*

316 तर्जः *मला लावल्या ध्यान–1044*

सुख बरसाओ आदित्यो जानें तुम्हारी महिमा
तुम नेतृत्व के करने वाले, नर हो हे सुम्ना!॥ ॥सुख बरसाओ॥

अग्रणी नेता तुम हो जग के (2) सुखमयी शरण पायें शरणागत
शरण पाये बिन हुए अकेले (2) कुछ तो दया करना॥ ॥सुख बरसाओ॥

ब्रह्मचर्य अखण्ड धार के (2) दिव्य ज्योति चहुँ ओर प्रसारते
तुम हो ऋत के परम उपासक (2) अंश कहीं ना अनृत का॥
॥सुख बरसाओ॥

शुद्ध भावप्रद सत्य का सेवन (2) और असत्य का करते भेदन
यही रहस्य है उन्नत पद का (2) और अनन्त गरिमा॥
॥सुख बरसाओ॥

ऋतावान संग ऋतजात भी,(2) अणु अणु में सत्य-प्रकाश भी
परिपूरित फिर यज्ञभाव भी,(2) सत्यरूप प्रतिभा॥
॥सुख बरसाओ॥

त्याग के अनृत, सत्य की वृद्धि,(2) ऋतावृध बन पायें सिद्धि
पड़े कहीं ना अनृत छाया, (2) सुनना सत्य कहना॥
॥सुख बरसाओ॥

इसीलिये ऋतवान हे नरो! (2) सत्यसेवी हमको भी कर दो
सर्वश्रेष्ठ सुम्नों को पाकर, (2) प्रतिरूप बनें प्रतिमा॥
॥सुख बरसाओ॥

सूरि बनें, पायें अमृत को(2) हमको सुख देना आदित्यो!
सर्व श्रेष्ठ सुख लें शरणागत,(2) हे सुख-भावालीना!॥ ॥सुख बरसाओ॥

---

*(**प्रतिरूप**) वैसा ही रूप, छाया। (**आदित्यो**) संसार के प्रकाशक। (**सुम्ना**) सुख ऐश्वर्य वाले। (**अग्रणी**) आगे ले जाने वाले। (**ऋत**) सृष्टि नियम। (**अनृत**) सृष्टि नियमों के विपरीत। (**सूरि**) ज्ञानी। (**भावालीना**) छाँव, छाया। (**भावप्रद**) भावों से सिक्त, भाव भीने। (**भेदन**) छिन्न भिन्न करना, तोड़ना। (**गरिमा**) गौरव। (**ऋतवान**) सत्य व यज्ञ से युक्त।*

114. शरीर की नदियों को बहाने वाला कौन?

को अस्मिन्नायो व्यदधाद विषुवृतः, पुरूवृतः सिन्धु सृत्याय जाताः।
तीव्रा अरुणा लोहिनीस्ता स्त्रधूस्त्राः, उर्ध्वा अवाचीः पुरुषे तिरश्चीः॥

अथ. १०.२.११

965. तर्जः *मल्हारीले वेन्मेधमे विन्तु विलरगाई 050*

हृदय सिन्धु से रक्त-जल की भी
नदियाँ निकलती हैं शुद्ध होने को
फिर मल को लेके बहतीं हृदय में
फिर शुद्धता पाने को

हृदय सिन्धु...

बाह्य जगत में जो अद्भुत व्यवस्था है
सिन्धु जल परिणत होता है वाष्प में
बनके वो बादल बरसता है धरा पर
फिर नदियाँ रहतीं सागर प्रवास में
शुद्ध और अशुद्ध रक्त बहता हृदय में
यह क्रम निरन्तर चलता है
जीवन चलाने को

हृदय सिन्धु...

वाह! मानव देह में किसने रक्त जल की
नदियों को देह में स्थापित किया
विद्यमान वो कई कई रूपों में
हृदय-सिन्धु में बहती चक्कर काटे
इसकी गति तो अति तीव्र रहती
परम पुरुष ब्रह्मा की महिमा
कौशल्य दिखाने को

हृदय सिन्धु...

115. सच्चा पूर्ण आस्तिक ही अहिंसक

उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह।
द्विषन्तं मह्यं रन्धयन्मो अहं द्विषते रधम्॥ *ऋः १. ५०.१३*

319 तर्जः *माझा होशिलका (3) 1066*

जानो अहिंसा, अहिंसा अहिंसा जानो अहिंसा,
परिपूर्ण आस्तिक हो जाओ (2) जानो अहिंसा,

जब तक प्रभु-विश्वास जमे ना (2) अटल न्याय जब तक समझें ना (2) कैसे कहें स्वयं को आस्तिक, कर लें यदि हिंसा॥

॥जानो॥

आत्मज्ञान ही आत्मप्रकाश है(2) इसे ना समझो तो विनाश है(2) जो अनात्म है, बन विद्वेषी, सही पथ से गिरता॥

॥जानो॥

परिपूर्ण आदित्य प्रभु है(2) बल और तेज का प्रथित विभु है (2) है सर्वज्ञ अखण्डित राजा, बल सामर्थ्य बड़ा॥

॥जानो॥

जो ब्रह्माण्ड में सदा से जागृत(2) न्याय दण्ड सब उसके आश्रित (2) हिंसक दण्ड उसी से पाये, ना हो बर्बरता॥

॥जानो॥

जग व्यवस्था ईश्वर की है (2) नियम जो तोड़े वही दुःखी है (2) दण्डविधान से नाश हो रहा, पापी घाती का॥

॥जानो॥

परमेश्वर के नियम ना बदलें (2) वैर द्वेष से क्यों फिर झगड़ें(2) प्रेम अहिंसा का प्रसार कर पाओ मानवता॥

॥जानो॥

सभी मित्र-शत्रु को मनाओ (2) मानवता का पाठ पढ़ाओ(2) हिंसक के ना रहें वंशगत, त्यागो अशिवता॥ ॥जानो॥

---

*(**अनात्म**) आत्मा को न जाननेवाला। (**विद्वेषी**) शत्रु। (**विभु**) अत्यन्त महत्ता वाला, महिमावान। (**बर्बरता**) पशुता, जंगलीपन। (**घाती**) हिंसक, मारने वाला। (**वंशगत**) वश में रहना। (**अशिवता**) अकल्याणता। (**प्रसार**) फैलाना, बिखेरना।*

116. रथ आगे बढ़े!

इन्द्र प्र णो रथमव पश्चच्चित्सन्तमद्रिवः। पुरस्तादेनं मे कृधि॥

ऋः ८.८०.४

211 तर्जः *माझी व्यथा नाही कुणाशी बोलतो–1305*

हे इन्द्र! मेरे रथ की,
रक्षा तुम करो,
जीवन का रथ पिछड़ा हुआ
अवनति में ये तो उलझ गया॥
हे इन्द्र! इसे परिरक्ष करो॥

॥हे इन्द्र॥

मेरे देखते ही देखते, मेरे साथी आगे निकल गये,
कोई घृति से कोई धर्म से, कोई त्याग तप से संभल गये,
ना विवेक है ना वैराग्य है, मैं क्या करुँ भगवन् कहो?

॥हे इन्द्र॥

कुछ कर्म योगी कर्मशूर, कुछ ज्ञानी रथ ज्ञानों से पूर
इनके रथों में प्रखर संवेग, पीछे से आके भी निकले दूर
हे वज्रवाले इन्द्र! मेरे रथ को शुभ पथ पर तुम धरो॥

॥हे इन्द्र॥

परिमंद रथ मेरा हुआ, रक्षा करो प्रकष्टतया।
तव इन्द्र-बल की करो वृष्टि, रथ पाये सुगति करो दया,
कभी हो ना मेरी अवगति, मेरे आत्म-अश्व में बल भरो॥

॥हे इन्द्र॥

ग रे ग म प ग ऽ रे सा नी सा रक्षा करो
ग रे ग प नी सा नी प ग ध प रे ग सा

---

*(**रथ**) शरीर। (**अवनति**) नीचे गिरना। (**परिरक्ष**) चारों ओर से बचाना। (**धृति**) धैर्य, दृढ़ता, दृढ़संकल्प। (**विवेक**) सत्यज्ञान। (**वैराग्य**) संसारी बन्धनों से विरक्त। (**कर्मशूर**) कर्मवीर, उद्योगी, परिश्रमी। (**प्रखर**) तेज, अत्यंत तीक्ष्ण। (**संवेग**) उत्तेजना। (**वज्र**) इन्द्र का अस्त्र। (**परिमंद**) अत्यन्त धीमा। (**प्रकष्टतया**) श्रेष्ठता से, उदारता से। (**आत्म-अश्व**) आत्मा रूपी घोड़ा।*

117. भूमिमातः

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम॥

अथ. १२.१.६२

तर्जः *माटीतुन जन्ममाझा*

भूमिमातः! पुत्र हैं तेरे दिया तूने जन्म रे
तेरी सेवा में होवे ये जीवन धन्य रे॥
॥भूमिमातः॥

मिली देह, माता तेरे ही रजकणों से
गोद में झुलाओ झूले मातृसुखों के
खिला-पिला आश्रय देती, माँ तू अनन्य रे॥
॥भूमिमातः॥

अन्न जल वायु औषध देती धन-मान रे
सुख, समृद्धि, रक्षा, विद्या का दान दे।
उपकार प्यारी माते! तेरे अनन्त दे॥
॥भूमिमातः॥

दुःख भय रोग हटाकर, बल स्वास्थ्य पुष्टि दे
आत्मिक उन्नति कर दे, मेघावी बुद्धि से
भोग्यरूप दुग्ध-दोहन से होते सब सम्पन्न रे॥
॥भूमिमातः॥

होवे उन्नति शारीरिक भोगें हम पूर्णायु
प्रतिबुध्यमान होवे, हो जायें मनायु
तेरा मातृत्व का माते! चढ़ता जाये रंग रे॥
॥भूमिमातः॥

तुझसे मिली देह आयु प्राण पुष्टि धन रे
वक्त आये सब कुछ कर दें तेरे अर्पण रे
दूध की कीमत चुके या हो मृत्यु से विबन्ध रे॥
॥भूमिमातः॥

---

*(**अनन्य**) सबसे अलग। (**रज**) धूल। (**प्रतिबुध्यमान**) पूर्णरूप से उन्नति प्राप्त। (**मनायु**) मननशील। (**विबन्ध**) आलिंगन।*

118. अश्रद्धावान पिछड़ जाते हैं

न्यक्रतून ग्रथिनो मृध्रवाचः पणीरश्रद्धाँ अवृधाँ अयज्ञान।
प्रप्र तान् दस्यूरग्निर्विवाय पूर्वश्चकारापराँ अयज्यून॥ ऋः ७.६.३

802 तर्जः *माणिक्ये पुईलेनी काणात काडुम्बो 1956*

धर्म और कर्म विहीन, ना फूलते फलते
ध्यान उपासना धर्म कर्म के फल फलते

धर्म और...

हैं जो अश्रद्धालु जन चाहे तो थोड़े दिन
आनन्द मौज करें, हो जाते फिर अनमन
स्थाई, रूप से कभी होते ना समृद्धशाली
बुरे कर्म अखड़ते॥

धर्म और ...

जो हैं श्रद्धालु जन, समझो के थोड़े दिन
हो जायें कुछ कष्टापन्न कष्ट टले तो शमन
जीवन के कर्म की गति जागती जिसमें सुमति
याज्ञिक श्रद्धा को वरें॥

धर्म और...

माया के जाल में फँसे, हानि अन्यों की करते
क्रूर हिंसक वाणी लिए अन्याय अघ करते फिरते
वार उनका दोधारी खुद बढ़ें औरों पे भारी
मैं ही मैं लिए मरते॥

धर्म और...

उपक्षय घात व हिंसा, दुर्लक्ष्य उनके यही
झूठ से होता दिन शुरू, मानते सत्य को नहीं,
एक दिन वो भी आता, खुलता पाप का खाता
औंधे मूँह गिरते॥

धर्म और...

ऐ प्यारे श्रद्धावानों अग्नि प्रभु को मानों
कर्म करो सारे याज्ञिक, श्रद्धा को विनय में ढालो
धर्म-कर्म में रुचि, करो आत्म-मन शुचि
प्रभु के बनके रहें॥

धर्म और...

119. जब कोई धूप से व्याकुल होता है

उप॑ च्छा॒यामि॑व घृणे॒रग॑न्म॒ शर्म॑ ते व॒यम्। अग्ने॒ हिर॑ण्यसंदृशः॥

477 तर्जः मानयिन यारो मन्दोड़केत-561

जब कोई धूप से होता है व्याकुल
छाँव वो ढूँढता है तरु की, शीतल
छाया से विश्राम पाके होता अनाकुल (2)
जगत्पते! छाया दे
जग-संतापों को हर ले॥ ॥जब कोई॥

यद्यपि तुम अग्नि हो लेकिन घृणी हो
स्वर्ण सदृश तेज वाली महाज्योति हो
तेजोमय अग्नीय हो चहुँ दिसी प्रदीप्त हो
शरणागत निडर है क्योंकि प्रभु तुम तो अभीत हो
जगत्पते! छाया दे
जग सन्तापों को हर ले॥ ॥जब कोई॥

धारणकर्ता को ना ये तेज़ जलाता
ये तो मनमोहक है पूर्ण शांतिदाता
तेरी शरण शम्प्रकर्ष, करती शमित दुःख-दुर्तम
आसुरी छाया में, पले छलछिद्र छद्म छेदन
जगत्पते! छाया दे
जग संतापों को हर ले॥ ॥जब कोई॥

जग-सन्तापों से हुए हम क्लान्त व कातर
बने असभ्य अशांत आसुरी छाया पाकर
ईशों के हे परमेश, तेरी छाया में रहें सचेत
अब तो ना रहा राग द्वेष न अघ ना अवलेप
जगत्पते छाया दे
जग संतापों को हर ले॥ ॥जब कोई॥

---

*(**अनाकुल**) जो उलझन में ना हों। (**घृणी**) ज्योतिर्मय। (**अग्नीय**) अग्नि संबंधी। (**अभीत**) निडर। (**शम्प्रकर्ष**) संतति की सर्वोपरिता। (**शमित**) शांत। (**दुर्लभ**) दुर्भाग्य, संकट। (**छल-छिद्र**) चाल धोखा। (**छद्म**) छल धोखा, कपट, जालसाजी। (**छेदन**) टुकड़े टुकड़े करना, विभक्त करना। (**क्लान्त**) थका हुआ, मुरझाया हुआ। (**कातर**) डरपोक, भीरू। (**अघ**) पाप। (**अवलेप**) घमंड। (**दुर्तम**) दुर्भाग्य।*

120. बँधे हुए भी बन्धन रहित

शचीवतस्ते पुरुशाक शाका । गवामिव स्रुतयः संचरणीः ।
वत्सानां न तन्तयस्त इन्द्र दामन्वन्तो अदामानः सुदामन्॥

ऋ॰ ६.२४.४

866 तर्जः ***मानस मिलये पुन्नोऽन्गाळ-119***

राग-भीमपलासी

हे जगदीश्वर! तुम 'पुरुशाक' हो, हो सर्वशक्तिमान (2)
प्रज्ञा और क्रिया दोनों में रहते सदा विद्यमान (2)
हे जगदीश्वर...

होती हैं दूध की धारें संचरित जैसे इन गौओं के थनों से
वैसे प्रभु की पोषण और कल्याण की शक्तियाँ बरसें युगों से
बाँधा प्रभु ने हमें नियमों में जिससे बनें ऋतवान (2)
हे जगदीश्वर ...

नियमों के बन्धन हैं हितकारक करते हमें बलवान सदा ही
सत्य के नियम हैं अतिसुखकारक, इनमें बसे भगवान मेधावी
आओ प्राप्त करें प्रभु-शक्तियाँ बनें कर्मशील प्रज्ञावान (2)
हे जगदीश्वर ...

ध सां सां सां सां सां सां सां सां नी प
पनी पनी नी नी नी नी नी नी सां नी प नी
रे ग रे ग सा, नी सा रे नी सां ऽ ऽ ऽ (अंतरा)

---

*(**'पुरुशाक'**) बहुत शक्तिवाला। (**ऋतवान्**) नियमानुसार चलने वाला। (**मेधावी**) बुद्धिमान। (**प्रज्ञावान**) उत्तम बुद्धि से युक्त।*

121. मन की शक्ति

आ त॑ एतु॒ मन॒: पुन॒: क्रत्वे दक्षा॑य जी॒वसे॑। ज्योक्च॒ सूर्यं॑ दृ॒शे॥

ऋ: १०. ५७.४

278 तर्ज: *माना मानव या परमेश्वर-2491 राग-मेघ मल्हार*

मन की शक्ति दो परमेश्वर
मन का जीव जगा दो
जग की ज्वाला जल रही है
आओ तुम ही बचा दो

॥मन की॥

मन मेरा निर्जीव हुआ है
निर्बल, बिन उत्साह,
मानों ये मन रहा ना मुझमें,
जागा नहीं उमाह,
जीवन-धारा मन्द बह रही (2)
जाग उठी निर्बलता
औषधी, अनगिन खाता फिरता
फिर भी ना कुछ बनता
हे चैतन्य महाप्रभु! आओ
मन-शक्ति को जगा दो॥

॥मन की॥

नव जीवन सञ्चार करो प्रभु,
मन में बल भर दे,
भांति-भांति शुभकर्म करा दे,
सद्गुण भर भर के,
सूर्यदेव जो जगत प्राण है, (2)
उसका दर्शन दे,
उससे प्रेरित होकर जीऊँ,
दीर्घायु वर दे,
मन-शक्ति मुझ में प्रविष्ट हो
कृपा करो, प्रभु वर दो!

---

*(**उमाह**) उत्साह, उमंग। (**चैतन्य**) सचेत।*

122. भूमि माता की महती महिमा

वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे।
यस्या उपस्थ उर्वन्तरिक्षं सा नः शर्म त्रिवरूथं नि यच्छात्॥2॥

यजु. १८/३०

454 तर्जः *माय भवानी तुझे लेकरु–1328*

भूमिमाता राज्यवान् है आत्मा जन जन की
देवो! आत्मा जन-जन की॥ ॥देवों!॥

भूमिमात का राष्ट्र शरीर है, सामूहिक आत्मा है जनों की(2)
दिखे समष्टि रूप अखण्डित है देवी अवनि॥ ॥देवों!॥

भूमि पर मानव पशु वृक्ष वस्तु सम्पत्ति सब माता की (2)
वैयक्तिक सुख-वाज-दातृता रसवत् रक्षितृ॥ ॥देवों!॥

इस अदिति माता को अपने अभिमुख हम कर लेवें मन से
इक स्वर से जयजयकार करें हम, गूँज उठे वाणी भी॥ ॥देवों!॥

आचरण और चर्चायें परस्पर करके उन्नत भाव जगायें (2)
उन्नति पायें, कमी न होवें ज्ञान अन्न बल की॥ ॥देवों!॥

ईश्वर हमें समष्टिरूप 'अदिति' की धारणा उत्पन्न कर दें।
प्रतिरूप हम धर्म निभायें प्रेरणा दे प्रेक्षण की॥ ॥देवों!॥

धर्म कर्म कर्तव्य प्रेरणा बिन कैसे हो मातोपासना (2)
अन्न ज्ञान बल धन समपत्ति मिले सभी को भूयण की। ॥देवों!॥

हे सवितः अपनी महिमाता के प्रति धर्म-प्रेरणा भर दो।
सारे व्यक्ति भेद भुलायें मित्र दृष्टि दो दृश्वन की॥ (दृ) ॥देवों!॥

---

*(**समष्टि**) सब का समूह। (**प्रतिरूप**) अपने जैसा रूप। (**अवनि**) धरा, धरतीं। (**वाज**) धन ऐश्वर्य बल। (**दातृता**) दान देने वाली, दानी। (**अदिति**) अखण्डनीय शक्ति। (**अभिमुख**) सामने, अनुकूल। (**प्रचरण**) प्रचार। (**प्रतिरूप**) अपने जैसा रूप। (**प्रेक्षण**) देखने की क्रिया। (**मातोपासना**) माता की उपासना। (**भूयण**) भूमि। (**महीमाता**) पृथ्वी माता। (**दृश्वन**) दर्शक। (**व्यक्तिभेद**) आपस के मंद भाव। (**रक्षितृ**) संरक्षक।*

123. अभीष्ट फलदाता

अघा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे । अभिष्टिकृद्विचर्षणिः॥

ऋः ६.४८.५

285 तर्जः *माये विन नाहीं बाई–1062*

सूक्ष्म से सूक्ष्म ये जीव है अभंग
फिर भी शक्तियाँ अनेक और कई रंग॥
॥सूक्ष्म से भी॥

प्रभु-महिमा देखो, जीव को दी इन्द्रियाँ(2)
दूर तक जो देखे सुने, हैं विचित्र शक्तियाँ(2)
जीव-इन्द्रियों का मेल (2) अद्भुत तारतम्य।
॥सूक्ष्म से भी॥

इन्द्रियों का बलदाता है प्रभु महेन्द्र (2)
इन्द्रियों के द्वारा बना जीव ज्ञान-केन्द्र (2)
हर अभीष्ट तत्त्व में (2) जगत्पिता का प्रबन्ध
॥सूक्ष्म से भी॥

यूँ तो सामान्य ज्ञान सभी जीवों को मिला है (2)
पर प्रभु प्रदत्त ज्ञान सत्य से तुला है।
है प्रभु सर्वज्ञ, चेतन(2) और गुण अनन्त॥
॥सूक्ष्म से भी॥

जैसी चाह वैसा कर्म जैसा कर्म वैसा फल(2)
अभीष्ट पदार्थों का वो कर्ता दाता अव्वल,
माँग लो अभीष्ट प्रभु से वो सर्वज्ञ अचण्ड॥
॥सूक्ष्म से भी॥

सखा कभी ना सखा के वचनों को तोड़े (2)
सुभग सौभाग्यों को मित्रभाव से खोले (2)
विध्न विधातक मित्र होते दूर स्वयं।
॥सूक्ष्म से भी॥

(अभंग) *अटूट।* ***(सर्वज्ञ)*** *परमज्ञानवान।* ***(तारतम्य)*** *गुण आदि का परस्पर मेल।* ***(अभीष्ट)*** *वांछित, मनोरथ।* ***(प्रदत्त)*** *दिया हुआ।* ***(चेतन)*** *चेतना युक्त।* ***(अव्वल)*** *सबसे श्रेष्ठ।* ***(अचण्ड)*** *सुशील, सौम्य।* ***(सुभग)*** *मनोहर, आनन्ददायक।* ***(विघातक)*** *मारने वाला, घात करने वाला।*

124. आत्मा का स्वराज्य

अत्रिमनु॑ स्व॒राज्य॑म॒ग्निमुक्थानि॑ वावृधुः। विश्वा॒ अधि॒ श्रियो॑ दधे॥

ऋः २.८.५

462 तर्जः *मारगड़ी तिंगड़ अल्लवा–1126 राग भैरवी*

कर्म फल भोगने आया, कार्य नये करने आया
त्रिविध दुःखों ने सताया, बार बार इस देह में आके
कर्म का फल पाया ॥ ॥कर्मफल॥

ये त्रिविध दुःख, आध्यात्मिक, अधिभौतिक-दुःख अधिदैविक
दुःख तीनों ही, मन के द्वारा, आत्मा अनुभव करता सारा।
यदि मन बुद्धि हो सदोष (तो), आत्मा पाता असंतोष
रुग्ण अशक्त देह इन्द्रियों ने
अधिभौतिक, दुःख, अनुभव करवाया॥ ॥कर्मफल॥

विद्युत्पात अनावृष्टि, भूकम्प दुर्भिक्ष अति वृष्टि
अधिदैविक दुःख का आगमन, करते उत्पात उच्छेदन
आत्मिक वाचिक दैहिक दोष, इसी तरह देते हैं क्षोभ
त्रिविध दोष से विरक्त आत्मा
बनता स्वराज्यक, कहाता अत्रयात्मा॥ ॥कर्मफल॥

मन इन्द्रियों के कृत्य-स्तुतिगीत, अत्र्यात्मा को करते विनीत
होती आत्मा महिमान्वित, कटते सारे दुःख त्रिविध
आत्मा धारे शोभायें, पायें श्री, श्रिय, शुचितायें
राष्ट्रात्मा बन यश भी कमाये
पाये, महिमा, गरिमा, शोभा, आभा॥ ॥कर्मफल॥

बनती स्वराज्यावस्था, आत्मा पाता दृत-सम्पदा
दुर्मद-दुर्मना-दुवन, यदि तजे वृत्तियाँ अधम
आत्मोत्सर्ग से जीवन साधें, खुद को ईश की डोर से बाँधे
श्री सम्पदा क्यों कर खोयें?
आओ खुद को अत्रि बनायें
त्यागें तमोगुण पायें प्रभु-छाया॥

---

*(**त्रिविध दुःख**) तीन प्रकार के दुःख (आध्यात्मिक, अधिभौतिक, अधिदैविक)। (**अनावृष्टि**) वर्षा का न होना। (**दुर्भिक्ष**) अकाल। (**उच्छेदन**) विध्वंस, नाश। (**वाचिक**) वाणी से। (**क्षोभ**) दुःख। (**विरक्त**) अलगाव। (**अत्रयात्मा**) अत्रि, तीनों दुःखों से छुटने वाला। (**श्रिय**) मङ्गल। (**शुचिता**) शुद्धता। (**दृत-सम्पदा**) सम्मानित धन ऐश्वर्य। (**आत्मोत्सर्ग**) आत्मा का त्याग। (**दुर्मद**) मद में चूर। (**दुर्मन**) बुरा मन। (**दुवन**) बुरा मनुष्य।*

125. जंगम स्थावर का राजा

इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान्न नेमिः परि ता बभूवः॥ *ऋः १.३२.१५*

213 तर्जः *मारा घट मा विराजता श्रीनाथ-215*

मैं अपने इन्द्र प्रभु का क्या वर्णन करुँ, शम्भुजी, महाप्रभुजी
मेरी वाणी नीरस, जिसमें शब्द ना कथन
टूटे फूटे शब्दों में गुनगुना रहा है मन, मेरे प्राण जीवन, ॥मैं अपने॥

कुछ तो चाहूँ मैं मन की पूरी साध कर लूँ (2)
जड़ व चेतन-राजा का अभिवाद कर लूँ (2)
मेरा तनमन है तुझपे वारी वारी भगवन्
रहूँ तुझमें में मगन॥ ॥मैं अपने॥

सूर्य चन्द्र तारों का नियामक है, वन पर्वत सागर का विधायक है
मानव पक्षी पशु का करे पालन, सबको तेरी लगन॥ ॥मैं अपने॥

दुष्ट पापी उच्छृंखल के वज्रबाहु, संत ज्ञानी गुणवान तेरे याचिष्णु
कर्मफल के नियम भी बनाये तू ही। जो ना बदलें इक क्षण॥ ॥मैं अपने॥

कृषिकर्ता मानवों का राजाधिराज है
मनोभूमि में उसके बीजों का प्रसाद है
अन्तःकरण या धरती ईश्वर से याज्य है
जिसमें करे मन उद्वर्धन॥ ॥मैं अपने॥

रथ के चक्र में जैसे ये आरे लगे
वैसे इन्द्र भी परिधी में व्याप्त रहे
वस्तुओं में सामञ्जस भी वो ही रखे
विश्व-चक्र का-चलन॥ ॥मैं अपने॥

इन्द्र राजराजेश्वर के गायें सब गीत
आओ बन जायें प्रभु के चरण-चंचरीक
करें गुञ्जन स्तुतियों का, मंडराये-प्रीत
करें तेरा भजन ॥मैं अपने॥

---

*(**अभिवाद**) वन्दना। (**नियामक**) नियंत्रण करने वाला। (**विधायक**) विस्थापक। (**याचिष्णु**) याचनाशील। (**याज्य**) यज्ञ सम्बन्धि। (**उच्छृंखल**) उद्दंड। (**उद्वर्धन**) वृद्धि। (**परिधि**) घेरा। (**सामञ्जस**) संगति। (**चंचरिक**) मंडराने वाला भौंरा।*

126. सुखकारी बना

सुशेवो नो मृळयाकुरदृप्तक्रतुरवातः। भवां नः साम शं हृद॥

ऋ. ८.७९.७

215 तर्जः ***मारा घटमा विराजता श्री नाथ जी 2592***

हमारे हृदयों में आकर समाओ जी
प्रभुजी! प्यारे प्रभु जी!

॥हमारे॥

इन हृदयों को सोम रस पिलाओ आत्मन्
शांत सुखमय हे सोम! बना दो जीवन
हमारे प्राण जीवन॥

॥हमारे॥

जिनके हृदय रहे हैं अभिमान से भरे (2)
क्षुद्र चञ्चल हैं जो तेरे ज्ञान से परे (2)
जो ना करते हैं अपना-आपा अर्पण
वो कैसे पायें दर्शन॥

॥हमारे॥

विषरूपी विषय त्याग देवें सभी (2)
अभिमानी तो मानव बनो ना कभी (2)
सदा तन मन हों तुझपे वारी रे वारी
हे प्यारे भगवन्!

॥हमारे॥

सोम-रस से हुए हैं शांत हृदय प्रभुजी (2)
मदहीन सुखी हैं हर समय शम्भुजी (2)
ज्ञान-कर्म की शक्ति है नम्रतामयी
जिनके हरि हो तुम॥

॥हमारे॥

हम सबकी विनय प्रार्थना तुम सुनो (2)
सबके हृदयों में सौम्यता, सरसता भरो(2)
सोम-रस देके हृदयों को शांत करो
हे दुःख भञ्जन!

॥हमारे॥

(क्षुद्र) *नीच, दुष्ट, अधम, तुच्छ।* ***(सौम्यता)*** *सरलता।* ***(सोम)*** *अमृत, ज्ञान, विद्या।* ***(भञ्जन)*** *बीमारी रोग अस्वस्थता।*

127. जीव के लिए सारा संसार

ओ३म्। तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे।
तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः॥

ऋः ९.६२.२७

951 तर्जः *मरिविल पुन्गुई ले मनीवांग 1689*

प्रभु तुमसे प्यार करता रहूँगा
ऋत-सत्य नियमों पे चलता रहूँगा
ज्ञानानुसार कर्म, करता रहूँगा
ऐसे में सहाय प्रभु क्या तुम बनोगे?
मार्ग दर्शन क्या करोगे?

प्यार प्रभु...

होई यारो हुई या हुई या (4)

प्रश्न तो उठता, ये जग प्रभु क्यों रचता?
'आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः' वेद कहता
लोकों में ये जीव बारम्बार विचरता
जग-विधान जीवों के हेतु प्रभु करता
जीव है इसका उपभोक्ता
जो बने यज्ञमय 'होता'

ऐसे में सहाय...
प्यार प्रभु...

द्यौ से पृथ्वी तक जो हैं जन्य पदारथ
एक भी जन्य पदारथ ना है अकारथ।
औषधि जल वन उपवन धान्य धनागम
भोग साधन हैं सचमुच सुख-साधन।
करना सदुपयोग सुधन
वरना है दुरुपयोग, निधन
बुद्धजीव, कर स्मरण

ऐसे में सहाय...
प्यार प्रभु...

---

*(**आवरीवर्ति भुवनेष्वन्तः**) जीव पुनः पुनः इन लोकों में आता जाता है। (ऋ. १०.१६६.३)*
*('**होता**') यज्ञकर्ता। (इन्द्राय द्यावओषधीरुतायोरयिं रक्षन्ति जीरयो वनानि॥) ऋ. ३.५१.५*
जीव के लिए द्यौ लोक है, औषधियाँ और जल वनादि सब मिलकर जीव के लिये धन की रक्षा करती है। (अन्तरा नं. 2)

128. भगवान् के क्रोध को दूर करने के तीन उपाय

अव॑ ते॒ हेळो॑ वरुण॒ नमो॑भि॒रव॑ य॒ज्ञेभि॑रीमहे ह॒विर्भिः॑।
क्षय॑न्न॒स्मभ्य॑मसुर प्रचेता॒ राज॒न्नेनां॑सि शिश्रथः कृ॒तानि॑॥14॥ *ऋ. १.२४.१४*

908 तर्जः *मालवून टाकदीप–484/490*

आ प्रभु से बाँध प्रीत, पाश काटता वो मीत
वो दिखाये सही दिशा, सत्य जगाये, हरे अलीक॥
प्रभु के क्रोध से बचें, है इसी के तीन उपाय
नमस्कार यज्ञ हवि, ये जीवन के तीन मीत ॥वो दिखाये॥

उसकी महिमा के आगे, हों श्रद्धा से नतमस्तक
जिससे भागे अहंकार, हो हृदय प्रतत पुनीत ॥वो दिखाये॥

कर्म करें यज्ञमय, हानिरहित, करें उपकार
देवपूजा संगतिकरण, दान दीप का प्रदीप ॥वो दिखाये॥

होवे जीवन हवि स्वरूप, तुच्छ स्वार्थता से दूर
परोपकार परायण, अनूप, त्यागशील भाव नीक ॥वो दिखाये॥

राजाधिराज हैं वरुण, घट-घट वासी धर्म निपुण
दूर करते हैं अनिष्ट, हैं प्रचेता गुण गुणीश ॥वो दिखाये॥

हे मेरे प्यारे आत्मन्, यज्ञमन करो जीवन
करके हविर्मय हृदय
ले आनन्द घन आशीश ॥वो दिखाये॥

---

*(**अलीक**) झूठ असत्य। (**प्रतत**) विस्तृत। (**अनूप**) अनुपम, सुन्दर। (**प्रचूर**) अत्यधिक। (**प्रगुण्य**) सम्यक् ज्ञान रखने। (**प्रदीप**) प्रकाश।*

129. कब तेरी चेतना हमें मिलेगी

अग्ने कुदा तं आनुपरमुवद्वस्यु चेतनम्।
अधा ही त्वा जगृभ्रिरे मर्तासो विक्ष्वीड्यम्॥

ऋः ४.७.२.

545 तर्जः *मालवून टाकदीप 484/490*

हे जगत के ज्योतिपुञ्ज करो प्रभास से अङ्ग अङ्ग
हे चैतन्य! हे प्रबोध दो तुम्हारा अमिट संग॥
॥हे जगत के॥

साधना में बीते युग फिर भी ना बने प्रबुद्ध (2)
रिक्त वाणी पूर्ववत् है, होगी कब कृपा अत्यन्त॥
॥हे जगत के॥

दया दृष्टि पाने, तुम्हें हृदय में किया ग्रहण (2)
निष्ठा है सम्पूर्ण परिपक्व होवेंगे सम्बन्ध॥
॥हे जगत के॥

पूजनीय हो प्रजा के महिमागान के सुयोग्य (2)
मन्द्र भाव भीने हृदय, लाए हैं, हे अनन्त!
॥हे जगत के॥

दे दो दिव्य ज्ञान, स्फूर्ति जागृति जयद ज्वलंत (2)
चेतना की दो चिन्गारी, हे प्रबुद्ध, हे चैतन्य!॥
॥हे जगत के॥

सहृदयता सौमनस्य की बहा दो धन्य धार (2)
ग्रस्त वासनायें हरो, हर लो सारे छल प्रपञ्च॥
॥हे जगत के॥

दिव्य चेतना से हो अनुप्राणित मनुष्य (2)
जिससे हम बनें महान दिव्य दानी देव संत॥
॥हे जगत के॥

---

*(**प्रभास**) कांतियुक्त। (**प्रबोध**) जगानेवाला। (**प्रबुद्ध**) सचेत, खिला हुआ। (**रिक्त**) शून्य, निर्धन। (**परिपक्व**) पूर्ण पका हुआ। (**मन्द्र**) मनमोहक। (**ज्वलंत**) प्रकाशित। (**चैतन्य**) चित्त स्वरूप आत्मा। (**सहृदयता**) सौजन्य, भलमनसी, सुजनता। (**सौमनस्य**) आनन्द। (**ग्रस्त**) पकड़ा हुआ। (**प्रपञ्च**) धोखा, आडम्बर। (**अनुप्राणित**) जीवन्त। (**जयद**) जीतनेवाला।*

130. हे सोम!

हृदिस्पृशस्त आसते विश्वे षु सोम धामसु।
अधा कामा इमे मम वि वो मदे वि तिष्ठन्ते वसूयवो विवक्षसे॥

ऋः १०.२५.२

503 तर्जः *मावन त्या दिनकरा-1095*

भक्त तेरा बन गया, सोम प्रभु!
भक्त तेरा बनता गया
॥भक्त तेरा॥
जान गया हूँ तेरे हृदय को छूने वाले भक्त अनन्य हैं (2)
सब स्थानों लोकों धामों में (2) भक्त भजन करें तेरा॥
॥भक्त तेरा॥
ना जानूँ निज भक्ति भाव लिये तेरा हृदय कभी छू भी सकूँगा (2)
परमार्थी निष्काम भक्ति का तो उतरे खरा॥
॥भक्त तेरा॥
सच पूछो तो बिना समझे ही हृदय फँसा है इच्छाओं में। (2)
और महत्त्वाकांक्षाओं में ये मन बरबस अड़ा॥
॥भक्त तेरा॥
मान प्रतिष्ठा सिद्धि रिद्धि की अभिलाषा जाग रही हैं (2)
आखिर तो हे सोम प्रभु मैं तुमसे मिलने खड़ा॥
॥भक्त तेरा॥
पूरी करके अभिलाषाएँ मेरे हृदय को हलका कर दो। (2)
जो पाऊँ सो आखिर तुझमें होगी समर्पित मया॥
॥भक्त तेरा॥
माना के अर्थार्थी भक्ति दूर रही निष्काम भाव से (2)
हृदयहारी परमेश्वर तुम ही भरोगे मुझमें श्रद्धा॥
॥भक्त तेरा॥
सब पूरित इच्छायें आकर तुझमें ही मिल जायें प्रभुवर (2)
तेरा हृदयस्पर्शी निष्काम भक्त बना मुझे सगा॥
॥भक्त तेरा॥

---

*(**अनन्य**) अभिन्न, अनुपम। (**परमार्थी**) गूढ़, सत्यवादी। (**मया**) स्नेह, प्यार। (**अर्थार्थी**) धन-अभिलाषी।*

131. हे समर्थ परमेश्वर!

दृते दृꣳह मा।

ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासं ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासम्॥ *यजु. ३६/१८*

809 तर्जः ***माविन चोटिले मळूमुळले मधुरमाय–086/214 राग मिश्र खमाज***

भाजन बन जाऊँ मैं तेरा प्रभुजी, लग जाए तुझमें ही मन।
परमानन्द पिला दे, सरस रस, तुझमें हो जाए समर्पण
करता रहे मनवा तेरा भजन, मन में रम जाए ओ३म् की धुन
रहे शुद्ध सदा ही मन वचन करम॥ भाजन बन...

कली तेरे बाग की खिलने को तरसे, देदे प्रेम का सींचन
भर दे इसमें विविधि रंग
जीवन-पुष्प को कर दे सुगन्धित खिल जाए मेरा अङ्ग-अङ्ग
संग वाणी आत्मा प्रबुद्ध मन
ना पाप छाये ना गर्व, ना राग द्वेष अनर्थ
दिया तूने जीवन का स्वर्ग, यूँ बीत जाए ना व्यर्थ
तेरी देख रेख में ही बीते जनम॥ भाजन बन...

वेद की छाँव में मैं पल पल कर, पा जाऊँ मैं भी अमर पद
बढ़ जाए आत्मा का कद
पूजा-प्रेम कर्तव्य सिखा दे मन वीणा कर स्वरवत्
हर ले भय ईर्ष्या और मद
मुझे गोद में बिठा के पाठ प्रेम का सिखा दे
धन माल का करूँ क्या, जो दूरियाँ करा दे
तेरी देख रेख में ही बीते जनम॥ भाजन बन...

श्रद्धा प्रेम विनय भक्ति का, ज्ञान भी पाऊँ तुम्हारा
चाहूँ तेरा सुखद सहारा
तेरे सम्यक दर्शन में ही, बीते जीवन प्यारा
मैं जन्म ना चाहूँ दोबारा
रहूँ तुझसे ना कभी दूर, तू लक्ष्य मेरा है पूर
माता-पिता है तू रक्ष, मैं तेरा लाडला वत्स
तेरी देख-रेख में ही बीते जनम॥ भाजन बन...

132. दिव्य आचमन

१ २ ३२३ १२३ १ २ ३१२ 2उ ३ १ २

शं नो देवीरभिष्टये शं नो भवन्तु पीतये। शं योरभि स्रवन्तु नः॥ *यजु. ३६/१२*

८०८ तर्जः *माविन चोटिले मळमुळले मधुर माय 086/214*

माहिन आनन्दन परब्रह्म परमेश्वर, सुख सौभाग्य प्रदाता
परमानन्द सरस रस दायक, भय भञ्जन सुखदाता
शिवमंगल कारक, दिव्य-गुणोध आदि-व्याधि-शामक, हे सुबोध!
सुख-शान्ति की तुमसे है अभिलाषा॥

॥माहिन॥

कण कण निवासक, कल्याणकारी
परमपिता परमात्मा
सर्व आत्माओं की हो, आत्मा
सतत् प्रवाहित स्त्रोत तुम्हारा, जो सुख-सौभाग्य लाता
और शुद्ध प्रबुद्ध बनाता
उपर की ओर उठकर
जाते हैं प्रभु की ओर
तुम बिन ना कोई दूजा
जो सुख-शान्ति का ठोर
सुख शान्ति की तुझसे है अभिलाषा...

॥माहिन॥

धारणा ध्यान समाधि से करते
साक्षात्कार प्रभु का
दृत दिव्य प्रभु है अनूठा
आत्म विभोर हो जाते ऐसे, सुख-शान्ति देती ऋजुता
पा जाते आनन्द की वर्षा, उसे दिवस-रात्री पूजें
करें ध्यान नित उसी का
होने लगेगा यूँ फिर, अनुभव वितत विभु का
सुख शान्ति की तुझसे है अभिलाषा

॥माहिन॥

---

*(**विभु**) सर्वव्यापक। (**माहिन**) पूजनीय। (**गुणोध**) गुणों का समूह। (**सुबोध**) उत्तम ज्ञानयुक्त। (**दृत**) आदरणीय। (**ऋजुता**) सरलता।*

133. परम प्रिय परमैश्वर

स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः। इन्द्रो विश्वा अति द्विषः॥

ऋः ८.१६.११

657 तर्जः *मिड़ीतुम्मिल पुणरुम्न नेरम परयादे अरियुम अनुरागम-214*

तरणी लगा प्रभु खेवन
प्रारम्भ किया जब से निदिध्यासन
परिशमित हुए द्वेष
प्रभु का छाया परिवेष
पीये, पीये
भर भर अमृत के प्याले॥ ॥तरणी लगा॥

की प्रभु से वन्दना
दी प्रभु ने सान्त्वना
टेर हमारी ले ली पूरी सुन
तरणी शरण की, दे दी प्रभु ने
हुए द्वेष भाव सारे गुम
'पप्रि' प्रभु के हो गये हम
सुख-आनन्द में डोले
कुशल-क्षेम में हो आसन्न
प्रभु के बन गए, मन भावन ॥तरणी लगा॥

मिट गई है तुच्छता
भा गई है सत्यता
पाकर स्नेह तव भगवन्
भर रही है भव्यता
कर्म-कर्मण्यता
हे परमात्मा! तेरे संग
तुझसे पाया जब ऋत-मन
भर लिए प्रेम के झोले
करते रहे इस तरह प्रसन्न
आत्मा कर दी परिपूरन॥

---

*(**तरणी**) नाव, नौका। (**निदिध्यासन**) परमात्मा का सान्निध्य। (**परिशमित**) पूर्ण शांत। (**परिवेष**) चारों ओर से रक्षा करने वाला। (**सान्त्वना**) प्रेम, प्रणय। (**टेर**) पुकार। (**पप्रि**) पूर्ण करने वाले। (**आसन्न**) जुड़ा हुआ। (**ऋत-मन**) नियमों पर चलने वाला मन।*

134. हरि को हरि बनने दो

कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन्वनस्य जठरे पुनानः।
नृभिर्यतः कृणुते निर्णजं गा अतो मतीर्जनयत स्वधाभिः॥

साम. ५३० ऋ. ९.९५.१

659 तर्जः *मिनी तानिज पुरिइरिक्युम मदयेनो–189*

हरि भक्ति में मन को रमने दो
और हरि को हरि बनने दो
इस आत्मा को बहुविध बल दे दो।
पाप वृत्तियाँ दूर ढकेलो।
मेरे संग हे हरि रहना तू तू ही तू
बून्द अमृत की पिला देना तू ही
संगी संगी संगी, सदा रहे प्रभु संगी, संगी संगी संगी,
॥हरिभक्ति॥

चित्त वृत्तियों में रंग अपना भर दो
आकर्षित इन्हें अपनी ओर कर दो
कर दो कर दो इनको कर दो
छूटे ना संग तेरा हृदय में घर कर लो
हृदयासन पर बैठो, दूर कुमार्ग से कर दो
गाऊँ सदा तेरे गीत, तान तरंगित करो
मन क्या करे तुझ बिन, शरण में लो मुझको
॥हरिभक्ति॥

धारणा ध्यान समाधि है संयम
किया चित्तचोर को आत्म-समर्पण
संयम संयम पूर्ण हो संयम
लोहा मैं तुम चुम्बक, भक्ति में मैं हूँ नीरत
मन स्थित प्रज्ञ है अवरत, हरि-दर्शन हुए अवतस
मन मोहक तान सुन, सुध-बुध हो गई गुम
डूबा हरि ध्यान में लेकर हरि-प्रेम-धुन॥
॥हरिभक्ति॥

---

*(**नीरत**) डूबा हुआ, मस्त। (**स्थित प्रज्ञ**) सभी विकारों से रहित। (**अवरत**) स्थिर। (**अवतस**) श्रेष्ठ।*

135. दिव्य नौका

रथाय नावमुत नो गृहाय नित्यारित्रां पद्वती रास्यग्ने।
अस्माकं वीराँ उत नो मघोनो जनाँश्च या पारयाच्छर्म या च॥

ऋः १. १४०.१२

298 तर्जः *मी आज फूल झाली-1074*

पानी में बाढ़ भारी, संकट बढ़ा ही जा रहा
चारों तरफ तबाही॥ ॥पानी में॥

भय है हमारे रथ बहें, हुए भवन धराशायी
जन पशु को लीलती हुई बनी बाढ़ दुःखदायी,
जानोमाल के विनाश से बढ़े दुःखमय व्याधि। ॥पानी में॥

परिवार धन हमारे रथ जो भी बचे बचा लो
धन माल सम्पदायें सब नाव पर चढ़ा लो
वरना लपेट बाढ़ की हो जायेगी त्रासदायी॥ ॥पानी में॥

संसार भी नदी है, उफान उठाते दस्यु
पर दिव्य संदेशों के इस नाव में हैं चप्पु
माँझी बनाके प्रभु को उस पार जा उतारी ॥पानी में॥

तरणी है पद्वती काटे जलरूपी वासनायें
केवल न अपनी चिन्ता औरों को भी बचायें
औरों के की तरण में अपनी लगे भलाई॥ ॥पानी में॥

सब देहों के रथों को निज नाव में बिठा लो
परिवार राष्ट्रवीरों के धनिकों को भी बुला लो
आरूढ़ होवें इस पर छोटे बड़े संसारी॥ ॥पानी में॥

यह राग द्वेष मद की उफान वाली सरिता
सङ्कल्प कर चढ़े तो क्यों न बनें विजेता
अनुभूति ब्रह्मानन्द की पाते रहे उपहारी ॥पानी में॥

तारो हमारी नैया संसार के खिवैया
तो चढ़ा दो नित्यारित्रा पद्वती तैयार नैया
तरणी को तारो भगवन् सुनो भक्त की दुहाई॥

---

*(**लीलना**) बहा देना। (**पद्वती**) पेरों वाली। (**नित्यारित्रा**) नित्य चप्पुओं वाली। (**आरूढ़**) चढ़ना सवार होना। (**दस्यु**) शत्रु। (**तरणी**) नाव। (**दुहाई**) पुकार। (**उपहारी**) याज्ञिक।*

136. स्वामी से कौन नहीं माँगता?

मा त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं गिरा।
भृणिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत॥

ऋः ८.१.२०

396 तर्जः *मी गाता ना गीत तुला -MP3*

हे इन्द्र सदा मैं कुछ ना कुछ तुझसे माँगूँ।
खड़ा रहा मैं झोली पसारे

॥हे इन्द्र॥

कभी तुझसे आत्मबल माँगूँ तो कभी बुद्धि
कभी धर्म-कर्म-अभिलाषा
कभी शत्रु विजय, धनसम्पत्ति, कभी आत्मशक्ति
तुझसे ये पाते हैं सारे॥

॥हे इन्द्र॥

मैं संकट में साहस करता, धैर्य विपत्ति में
दस्तक तेरे द्वार पे देता
कभी वैयक्तिक कभी सामाजिक उन्नति में
मैं बढ़ता तेरे ही सहारे॥

॥हे इन्द्र॥

तुम विश्व सम्राट हृदय-मन्दिर के राजा
तुझ नृप को शीश नवाऊँ
तुझसे ना माँगू तो फिर मैं किससे माँगूँ?
हम बैठें तेरे आधारे॥

॥हे इन्द्र॥

मैं प्रातः सायं सोमयज्ञ को रचाऊँ
मैं यजन का शिविर चलाऊँ
वाणी का क्षारण, निज भक्ति से मैं पाऊँ
करो शुद्ध विचार हमारे॥

॥हे इन्द्र॥

कहीं माँगते माँगते कुपित तुझे ना कर दूँ
तेरे रुद्र रूप से हूँ डरता
मुझ याचक-सम्मुख सिंह रूप ना धरना
क्यों ना सौम्यरूप से उबारे॥

॥हे इन्द्र॥

पुरुषार्थी बनकर, केवल तुझसे ही माँगूँ
पुरुषार्थी का तू प्रणेता!
क्यों भाग्य सहारे आलसी जीवन जीता?
हम क्यों न बनें तेरे प्यारे॥

॥हे इन्द्र॥

मैं माँगूँ आप कृपा कर देते ही रहना।
कर जोड़ यही है कहना
स्वामी-सेवक का रहे परस्पर ये नाता
बिन हिचक आया तेरे द्वारे॥

॥हे इन्द्र॥

---

*(**क्षारण**) शुद्ध करना, पवित्र करना। (**शापित**) क्रोधित। (**दस्तक**) खटखटाना। (**वैयक्तिक**) व्यक्ति सम्बन्धित। (**नृप**) राजा। (**यजन**) यज्ञ करना। (**रुद्र**) दण्ड देने वाला महेश्वर। (**सौम्य**) शांत, शीतल। (**प्रणेता**) नेता। (**हिचक**) शर्म, लज्जा। (**कुपित**) क्रोधित।*

137. दैव्य जन और मनुष्य जन

यत्किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरामसि।
अचित्ती यत्तव धर्मायुयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः॥ *अथ. ६.५१.३*

335 तर्जः *मी पाहतो स्वप्नी तुला-1284*

तुम दैव्य मन हो हे वरुण हम पतित मानव हैं सभी
हम गिरें तो पड़तों को उठाओ हे दयामय हे हरि॥ ॥तुम॥

हम द्रोह करते हैं सभी (2) ना धर्म पे चलते सही
तेरा धर्म सत्य अखण्ड है, क्यों पाते ना तेरी निधी॥ ॥तुम॥

तेरे सत्य-धर्म की देन को क्यों खो रहे व्यवहार में?
कितना बड़ा ये द्रोह है भोगेंगे हम कहीं ना कहीं॥ ॥तुम॥

अस्तेय दम क्षमा धैर्य शम ये सब सनातन धर्म हैं
पर हम परिपालन में इनकी डालते कितनी हवि ॥ ॥तुम॥

हे देव तुमसे है प्रार्थना ना दण्ड हमको कठोर दो
कर दो क्षमा हे दयाग्रणी! ना धर्म-भंग करें कभी॥ ॥तुम॥

या तो अज्ञान प्रमाद है या है ये असावधानी।
आखिर तो हम अल्पज्ञ हैं सर्वज्ञ हो दयावान तुम्हीं॥ ॥तुम॥

तेरे राज्य में ना हो राजद्रोह, जानूँ अक्षम्य अपराध है
कैसे बने मन द्रोह का जब तेरी शक्ति है अग्रणी॥ ॥तुम॥

दयामय करो कल्याण तुम, यही प्रार्थना तुमसे मेरी
सान्निध्य से निज प्रेम दो, प्रभु हम बने आत्म त्यागी॥ ॥तुम॥

बस गिड़गिड़ा के रोने दो, ये पश्चाताप पाले धृति
ताके जागे सत्य-धर्म की, ये प्रीत सच्चे हृदय की॥ ॥तुम॥

---

*(**हरि**) इन्द्र, शिव, यम, ब्रह्मा, सूर्य। (**द्रोह**) षडयंत्र। (**दयाग्रणी**) दया में आगे। (**अस्तेय**) चोरी न करना। (**दम**) इन्द्रिय दमन। (**शम**) शान्ति। (**अग्रणी**) सबसे आगे।*

138. वाणी की शक्ति

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्त।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रेषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि॥ *ऋ.१०.७१.२*

465 तर्जः *मी बाळ असा जाग शिकारी 2710*

ये धीर पुरुष बोलते सच्ची वाणी (2)
बोले ज्यों सुधी-सुजानी॥ ॥ये धीर पुरुष॥

जैसे सत्तू साफ करे हम छान के,
मन वैसे रखें साध के,
कल्याणकारी निकलें शब्द वाक् से
शोभित रहें अन्तर्भाव से
जैसे सत्तु साफ करना कठिन है
वाणी की भी शुचिता कठिन है,
पर धैर्यशाली प्रज्ञामय
करें, यत्न, बनें ज्योतिर्मय
निर्मल निर्दोष निरामय
ये व्यक्त वाणी उनकी बने शक्तिशाली (2) ॥ये धीर पुरुष॥

ये धीर पुरुष वाक्-सखा हो जाते
शंसित शक्ति को पाते
शाब्दिक हृदयों में प्रेम-प्रसित हो जाते
बने शब्द अर्थ के सहचर
नित सम्बन्धों का, सदृश पाते अनुभव
तेजों का होता उद्भव
वाणी के प्रकटित शब्द
अर्थापत्ति में हैं समर्थ
पाते ऐच्छिक ऐश्वर्य
बसती, वाणी में लक्ष्मी-कल्याणी॥ ॥ये धीर पुरुष॥

---

*(**सुधी**) विद्वान, समझदार। (**सुजानी**) अच्छा जानने वाले। (**वाक्**) वाणी। (**अन्तर्भाव**) अन्तर्गत होना। (**शुचिता**) पवित्रता। (**प्रज्ञामय**) बुद्धिमय, मेधामय। (**निरामय**) निष्कपट, कुशल। (**व्यक्त**) प्रकटित। (**शंसित**) स्तुत्य अभिलिषित इच्छित। (**प्रेम-प्रसित**) प्रेम पाने के प्रबल इच्छुक। (**सहचर**) साथ चलने वाले, सखा। (**सदृश**) साक्षात्, सामने। (**उद्भव**) उत्पत्ति। (**अर्थापत्ति**) मीमांसा के अनुसार वह प्रमाण जिसमें प्रगट रूप में किसी विषय को प्रकाशित ना करके केवल शब्द द्वारा ही विषय की सिद्धि होती है वह। (**ऐच्छिक**) इच्छानुसार मनोनीत।*

139. ऐश्वर्य दो

यमग्ने मन्यसे रयिं सहसावन्नमर्त्य
तमा नो वाजसातये वि वो मदे यज्ञेषु चित्रमा भरा विवक्षसे॥

ऋः १०.२१.४

387 तर्जः *मीरा बाई कातर वेड़ी–1273*

हे सहसावन्! तू महान है, तेरी अद्भुत कृति,
तेरी महत्ता अनुभव करता, पाऊँ शरणागति॥
सुन लो प्रभु मेरी अरजी॥

॥हे सहसावन्॥

माँगना चाहूँ पर क्या माँगूँ? योग्यता है नहीं याचक की(2)
योग्य समझते हो वो दे दो, तुम पूरण अनुभवी॥

॥हे सहसावन्॥

उन्नति हेतु मुझे यदि तेरे, बल का लाभ दिया तूने प्रभु
फिर भी यदि आ ही गया विमद तो, होंगी ना उन्नति॥

॥हे सहसावन्॥

मैं तो तेरी या देवों की पूजा का ही धन बल मागूँ।
यज्ञरूप कर्मों के हेतु पाऊँ तुमसे सति॥

॥हे सहसावन्॥

मुझे चित्रधन अपना दे दो आत्मा गुणों से होवे चित्रित(2)
यदि सत्वगुण धारण कर लूँ कहलाऊँ तब धनी॥

॥हे सहसावन्॥

परितृप्त मैं खुद को कर के, तेरे उस दिव्य रूप को पाऊँ (2)
मनुष्यत्व देवत्व का बल दो, हे मेरे रयिपति॥

॥हे सहसावन्॥

---

*(**सहसावन**) शक्ति का भण्डार। (**रयि**) देने योग्य ऐश्वर्य। (**कृति**) कार्य। (**सति**) दान। (**चित्रधन**) विलक्षण धन, प्रभु-गुणों से चित्रित धन। (**सत्वगुण**) अच्छे काम करने के गुण। (**रयिपति**) धन ऐश्वर्यों के स्वामी।*

140. मित्र और वरुण की स्तुति का लाभ

प्र वो॑ मि॒त्राय॑ गायत॒ वरु॑णाय वि॒पा गि॒रा। महि॑क्षत्रावृ॒तं बृ॒हत्॥

ऋः ५.६८.१ साम. ११४३

276 तर्जः *मी ही अशी भोळी कशी ग-1070*

गीत स्तुति गाये ये वाणी (2)
गाये वाणी।
प्रभु तारते विध्न बाधाओं से
हम प्रार्थी हैं, प्रभु है दानी
गाये वाणी॥

॥गीत॥

मित्र वरुण प्रभु जीवों को पाले
सत्मार्ग ले जाके सम्भाले
हितचिन्तक को मित्र बना ले (2)
ईश-स्तवन से वाणी सजा ले
वर ले वरुण, जो रत्नों का स्वामी॥

॥गीत॥

जीवन सार्थक वरुण-वरण में
अगणित सुख मिले गुण कीर्तन में
मिले सज्जनों से मान जीवन में (2)
पाप निवारें करें ना हानि,
मिले आनन्द, हो तृप्ति रूहानी॥

॥गीत॥

---

*(**प्रार्थी**) प्रार्थना करने वाला। (**स्तवन**) स्तुति। (**वरण**) पूजा, अर्चना, सत्कार। (**रूहानी**) आत्मिक स्तर पर।*

141. गगन में तार जोड़ने वाला

आ पप्रो पार्थिव रजो वद्धधे रोचना दिवि।
न त्वावाँ इन्द्र कश्चन न जातो न जनिष्यतेऽ विश्वं ववक्षिथ॥

ऋः १.८१.५

209 तर्जः *मुक्या हुदं क्य बेगाणे कुणाला-1303*

महत्ता तुम्हारी भला कैसे समझ पायें
कलाकार तुमसा न है कोई, वेद बतायें
तुम्हीं ने पदार्थ बहुमूल्य रच के (2)
ये द्युः पृथिवी लोक सजाये॥ ॥महत्ता

पवन मिट्टी पानी अमोलक पदार्थ
बिना इसके रहता ये जीवन अकारथ
सुमन रहते सुरमित, ये तरुओं के साये
विविध अन्न औषधि धरती पे प्रभु उपजाये॥ ॥महत्ता

यहाँ सोना-चाँदी लोहा हीरक है
खनिज-कोयला और गंधक नमक है
उदधि सीपियों मोतीयों से भरे हैं
कषाय मधुर अम्ल कटु-रस दिलाये॥ ॥महत्ता

ये ग्रह सूर्य-चन्द्र झिलमिल सितारे
प्रकाशित ही रहते प्रभु के सहारे
ये पार्थिव कर्तृव्य भुलाया न जाये
कलावित-प्रभु की महिमा कहाँ तक गिनायें॥ ॥महत्ता

तू ही ब्रह्मा, विष्णु है, यमकाल, शिव है
अनेकों हैं गुण जिससे जग अनुशासित है
तो फिर क्यों जगत तुझको टुकड़ों में बाँटे?
तेरे नाम की आड़ लेकर कलह क्यों मचायें॥ ॥महत्ता

---

*(**अकारथ**) व्यर्थ, असार। (**सुरभित**) सुगन्धित, श्रेष्ठ। (**खनिज**) खान। (**उदधि**) समुद्र सागर। (**कषाय**) सुगन्धित, कसैला। (**अम्ल**) खट्टा। (**कटु**) कड़वा। (**पार्थिव**) भूमि सम्बन्धित। (**कर्तृत्व**) प्रबन्ध, व्यवस्था, योजना। (**कलावित**) कला को जानने वाला। (**अनुशासित**) संयमित।*

142. अहर्निश प्रवृत्त स्तोम

मम त्वा सूर उदिते मम मर्ध्यान्दने दिव्यः।
मम प्रपित्वे अपिशर्वरे वसवा स्तोमासो अवृत्सत॥ *ऋः ८.१.२९*

449 तर्जः *मुंजई कुट्टमवालुम कुटुम पार्ते-578*

प्रभु तेरी महिमा हम गाते, स्तुति प्रणति से तुझे ध्याते
हे मेरे इन्द्रदेव, असहाय के सहाय, सर्वदा सर्वथा, तेरी स्तुति हो अपाय
अन्धकार चीर करके ले आते पवित किरणें
लाके धरती को जगमगाते॥ ॥प्रभु तेरी॥

परम द्योतित सूर्य लालिमा, उषा काल में उदित हो रही
पावन वेला, स्तोत्र तुम्हारे हृदय वाणियाँ मस्त हो रहीं
रात्री के गमन या दिन के आगमन का (2)
मनमोहक घटना, घड़ी है, ये तेरी ही कृति॥ ॥प्रभु तेरी॥

जब मध्याह्न में मरीचिमाली, गहन गगन के मध्य विराजे
पूर्ण तीव्रता से वो तपता, ऐसे समय भी स्तोत्र हैं गाते
तीव्रतम प्रभा के स्त्रोत भी तुम्हीं हो(2)
चढ़ता सूर्य है तपी उसमें तेरी ही ज्योति ॥प्रभु तेरी॥

जब सन्ध्या में, सूर्य देवता, मरीचियों को लगा समेटने
बिखर रही है सान्ध्य-रक्तिमा, भाव-विभोर मैं गाता महिमा
मध्यकाल के मोहक दृष्यों का तू सृष्टा (2)
ये तेरी ऐश्वर्य शक्ति हे विभु तेरी विभूति॥ ॥प्रभु तेरी॥

शुक्लपक्ष की सौम्य चाँदनी, कृष्ण वसना है अँधियारी
द्युः पर खिलती तब तारावली खेल ये सुन्दर कब से जारी
तेरे सब प्रकाशों का पाते हैं हम प्रदि(2)
ज्योत्सनामयी सर्वरी, या विभासित ये रवि ॥प्रभु तेरी॥

सबल स्त्रोत मम तुम्हें रीझाते, विभिन्न कालों में उमड़ाते
तब मैं और तुम मिलके रचाते, कवि गोष्ठियाँ प्रख्य प्रज्ञासे स्तुति
गान गाता हूँ मैं तुम्हारे यश के (2)
प्रेरक गीत मेरे लिये गाते हो गायक कवि॥

---

*(**अपाय**) पाप रहित। (**पवित**) शुद्ध। (**द्योतित**) प्रकाशित। (**स्त्रोत**) स्तुति, महिमा। (**कृति**) कार्य। (**गहन**) अथाह। (**मरीचि**) किरण। (**मरीचिमाली**) सूर्य। (**विभु**) सर्वोपरि। (**सौम्य**) शांत, गम्भीर। (**शुक्लपक्ष**) मास का सुदीपक्ष। (**तारावली**) तारों का समूह। (**प्रदि**) उपहार, भेंट। (**सर्वरी**) रात्री, विभावरी। (**प्रख्य**) स्पष्ट, साफ।*

143. हे राजन् वचन दो!

त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि। स यामनि प्रति श्रुधि॥२०

ऋः १. २५.२०

903 तर्जः *मुळिगलुम मौनम गणम–2342/371*

सत्यवचन वाचाल का, देना प्रभु अनुराध का
रक्षण तेरा है कमाल का, गुण है तेरा प्रतिपाल का

रक्षण कर दो मंगल, मेरा भावों भरा है मन

राजा तू है ब्रह्माण्ड का, महिमा भरे गुणगान का
है प्रार्थना तेरे भक्त की, भावों भरे अनुरक्त की सत्यवचन...
सारा विश्व तेरी वश्यता में प्रभु, हे विश्व-हितु
प्रखर बुद्धि से चला रहा अणु-अणु, तू है विभु
तू है इतना महान, तेरी वितत पहचान
तुझे विनत में होके कहूँ, फरियाद मैं तुझ से क्यों न करुँ?
मेरा एक ही विश्व में तू ही तू

राजा है तू ब्रह्माण्ड का, महिमा भरे गुणगान का
है प्रार्थना तेरे भक्त की, भावों भरे अनुरक्त की सत्यवचन...

इसी भावना से मैं भरा हूँ प्रभु, शरण में आया हूँ
मुझको वचन देना तेरे लिए प्रभु, बात अत्यंत लघु
मैं तो तुमसे वचन लिये बिना ना माँनूं
ये तो प्रेम भरी मेरी गुफ्तगू
मेरा प्रेम है प्रकट, मैं तेरा पूर्ण भक्त
मेरा आग्रह है मीठा, हे मालिक मिट्ठू!

राजा है तू ब्रह्माण्ड का, महिमा भरे गुणगान का
है प्रार्थना तेरे भक्त की, भावों भरे अनुरक्त की ॥सत्यवचन॥

---

*(**वाचाल**) बोलने में चतुर। (**अनुराध**) प्रार्थना। (**वश्यता**) वश में होने की अवस्था। (**हितु**) हित चाहने वाला। (**विभु**) सर्वव्यापक परमात्मा। (**लघु**) छोटा, कनिष्ठ। (**गुफ्तगू**) विचार विमर्श। (**मिट्ठू**) मीठा बोलने वाला।*

144. कहाँ भगवान? किसने उसे देखा?

प्रसुस्तोमं भरत वाजयन्तं इन्द्राय सत्यं यदि सत्यमस्ति
नेन्द्रौ अस्तीति नेम उत्व आहं कई ददर्श कमभिष्टं वाम ॥3॥
अयमस्मि जरितः पश्य मेह विश्वा जतान्यभ्यस्मि मह्ना।
ऋतस्य मा प्रदिशो वर्धयन्त्या दर्दि भुवना दर्दरीमि ॥4॥

ऋ. ८.१००.३/४

884 तर्जः *मुडिगलुम मौनम गळम मिडिगळम 2342/371*

स्तुति करो वाचाल मन, होवे स्तुति हृदयंगम
खोजूँ कहाँ तुम्हें भगवन्, जानूँ हृदय में देते दर्शन
किसने कहा तुम हो नहीं? फिर सृष्टि ये किसने रची?
क्यों हुआ संशय? हुई सोच विलय
हुआ चित्त चञ्चल, पूजा हुई विफल
आखिर कहो भ्रम में है कौन? विश्वास क्यों है विलोम?
॥स्तुति करो॥...

तेरी स्तुति से तो, परमेश्वर को कोई भी स्वार्थी नहीं
अन्तस्तल से निकली हुई स्तुतियों से भक्त हुआ है सुधी
भक्तों की श्रद्धाभक्ति दूर करे, संशय प्रमाद अविरति
कहता है अन्दर बैठा प्यारा प्रभु, ऐ भक्त तेरे अन्दर मैं ही हूँ
प्यारे प्रभु को क्यों ना भजें? क्यों ना हृदय में, दर्शन करें?
चित्त की चञ्चलता को त्याग दें, योग साधनों से प्रीति करें।
॥स्तुति करो॥...

ईश्वर का चिन्तन स्मरण और ध्यान, मूर्ख चाहे ना करे,
किन्तु जो हैं ऋतगामी, ज्ञानी, सुधी, योग में उसके रहें
वास्तव में सभी ईशोत्पादक शक्तियाँ दिखती कभी प्रत्यक्ष नहीं
उसकी पालन शक्ति भी व्यक्त नहीं।
इसका अनुमान ज्ञानी ही करते सही।
प्रभु चाहें तो प्रलय करें
लौकिक संसार को नष्ट करें
इस संहार में छिपा प्यार दिखे
सच्चे भक्त ही समझा करें॥ ॥स्तुति करो॥...

*(**हृदयंगम**) हृदय में समाहित। (**अविरति**) विषयों की आसक्ति। (**विफल**) व्यर्थ। (**सुधी**) बुद्धिमान। (**ऋतगामी**) नियमों पर चलने वाला। (विलोम) उलटा।*

145. प्रभु कृपा का भागी

त्वं तमग्ने अमृतत्व उत्तमे मर्तं दधासि श्रवसे दिवेदिवे।
यस्तातृषाण उभयाय जन्मने मयः कृणोषि प्रय आ च सूरये॥७॥

ऋ॰ १. ३१.७

641 तर्जः *मुत्तम पविड्वुम मुगिगळिल केवियुमा॥ 202*

उत्तम प्रभु-शरण, मिलती है प्रेरणा
परलोक लोक सुख, पड़ता है हेरना
स्वाध्याय में लगे ये मन, सुखानन्द को खेवना॥
॥उत्तम प्रभुशरण॥

अधिनियम सुख-दुःख का, प्रतिफल है कर्म का,
विरला ही मर्म जाने, आत्मा के धर्म का
ज्ञानी भेद को खोले, माने जो, सो बोले
प्रभु उसे करता प्रतिपन्न॥ ॥उत्तम प्रभुशरण॥

आत्मा की नित्यता और उसके हैं जन्म अनेक
जिसको ये भान होता बने वो सदा सुचेत
पाप कर्म वो छोड़े
पुण्य से नाता जोड़े
पुरुषार्थी बनता अनुपम॥ ॥उत्तम प्रभुशरण॥

आत्म-चिन्तन में, साधक स्वाध्याय करते हैं नित
बनता है भक्त सूरि करते प्रभु आकर्षित
आनन्द सुख से डोले, परमेश्वर का हो ले
यही मोक्ष-प्राप्ति-साधन॥ ॥उत्तम प्रभुशरण॥

लोक की कर ना उपेक्षा, परलोक जाये सुधर
स्वार्थपरायण ना हो, पापाचरण ना तू कर
उन्नतियाँ दोनों ले, प्रभु-कृपा भरे झोले
नित कर प्रभु आवाहन॥ ॥उत्तम प्रभुशरण॥

(अधिनियम) *सच्चे नियम।* ***(सूरि)*** *विद्वान।* ***(प्रतिपन्न)*** *परिपूर्ण।*

146. विश्वरथ का रथि

१२ ३ १ २ ३१ २३२ ३२ २१ १२ ३२१

इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मतिः। सृजदश्वं रथीरिव॥

ऋग. ९.६४.१० साम. ४८१

783 तर्जः *मुत्तम पविड़वुम मुगिगळिल केवियुमा-202*

दर्शन ऋषियों का जाता नहीं अकारथ
उनके हृदय-विचार सचमुच हैं प्रभुवत्
सुनते उनके हृदय के कान मनन में रहें अनुव्रत॥ ऋषियों का...

प्रभु-कथन अङ्ग अङ्ग में संदेश बन के छाये
अद्भुत ज्ञान प्रभु का हृदय मन को जगाये
सच्चे श्रोताओं को, बातें प्रभु की सुहाये
हो जाये जीवन सार्थक ऋषियों का...

जैसे रथ-चालक के रथ पे आरूढ़ होते।
स्वयं चल देता अश्व बिन चाबुक से मारे
ऐसे ही आत्मदर्शी के आते ही रंगमंच पे
हो जाते श्रोता अनुरक्त॥ ऋषियों का...

करते हैं पहले ऋषि तो संपूर्ण आत्म संयम।
फिर सम्पूर्ण जगत को करते हैं उद्बोधन
धार्मिक विजय की यात्रा, निस्वार्थ करते अतिपन्न।
हो जाते तृप्त श्रावक॥ ऋषियों का...

सारथी-अश्व परस्पर, होते हैं चुम्बकीय
करते हैं स्नेह व्यासङ्ग, अश्व तो हैं आत्मीय
यही तो है एकात्मता, सचमुच ये है दैवीय
चलता चक्र अनवरत॥ ऋषियों का...

विश्व ही है विजय रथ, सारथी ऋषि हैं चिन्तक
हम विश्व रथ के घोड़े जिन्हें पहुँचाते लक्ष्य तक
हैं जीवन संचारी वही हमारे पथिप्रज्ञ
ऋषि तो हैं कारक॥ ऋषियों का...

---

*(**अकारथ**) बिना लाभ का। (**अनुव्रत**) भक्त, निष्ठावान। (**उद्बोधन**) ज्ञान कराना, चेताना। (**अतिपन्न**) अत्यन्त बढ़ा हुआ। (**पथिप्रज्ञ**) मार्ग का जानने वाला। (**श्रावक**) सुनने वाले, श्रोता। (**व्यासङ्ग**) बहुत अधिक आसक्ति एक निष्ठता। (**संचारी**) गतिशील।*

147. हे मित्र मुझे क्यों मारना चाहते हो?

किमाग आम वरुण ज्योष्ठं यत् स्तोतारं जिघांससि सखायाम्।
प्र तन्मे वोचो दूळभ स्वधावो ऽव त्वानेना नमसा तुर ईयाम्॥

ऋ: ७. ८६.४

906 तर्जः ***मुत्तु चिपि पोलुरु कत्तिनुम्ले वन्नुरू-687/814***

हर श्वास में हर आस में तेरा नाम लिखा
रक्षक बनके राह दिखाना हे प्रभु परम सखा।

मुझे मत मारो हे तारक! हे परिपावन!
स्तोता हूँ प्रभु दर्शन दो मेरे मनभावन॥
तुम हो सखा हो समख्यावन
मित्र हो प्यारे भगवन्
करुँ मैं तेरा गुण-कीर्तन,
शुद्ध होवे मन, आचरण ॥मुझे मत मारो॥

क्या मैंने पाप किया है? या किसको त्रास दिया है
कोई तो कारण होगा, ना अब तक मुझको माफ, किया है
स्तवन नित आपका करता, समर्पण भावों को भरता
तुम प्यारे मित्र हो मेरे, इसलिए सुख दुःख में याद करता
जो मुझको है मिला, जीवन नया, इसे देने वाला कौन?
आर्द्रमान, हे प्रभु, प्यारे विभु, क्यों तुम रहते हो मौन?
तो दो शुभ दर्शन॥
॥मुझे मत मारो॥

तेरे सद्ज्ञान गुणों का, करुँगा पालन भगवन्
दया सत्य न्याय अहिंसा, इनको समझ के कर लूँगा, धारण
हो तुम प्रभु 'स्वधावान्', हो सर्वशक्तिमान्
और उसपे हो तुम दुर्लभ तुझपे ना कोई है किसी का दबाब

तू मुझको दर्श दे, मुझे हर्ष दे, तू बता दे मेरा पाप
ताकि जाऊँ सम्भल, कर दे प्रबल, बने ना मेरे कर्म श्राप
शुद्ध कर लूँ जीवन॥

॥मुझे मत मारो॥

बिना दर्शन के तेरे, उदासी छाई भगवन्
मेरी तड़पन को जानो, तेरे दरस बिना क्या है जीवन
और ना मुझे तरसाओ, मैं जीते जी मरता हूँ
सार्थक मेरा नमन हो, हाथ जोड़ विनती मैं करता हूँ
बन जाओ! तुम सहाय, हूँ असहाय, निष्पाप कर दो तुम
हितैषी हाथ तेरे, मेरे पाप हरें, लगी मन में तेरी धुन
मिले तेरा आयतन॥

॥मुझे मत मारो॥

---

*(**सखा**) समान स्वभाव वाला, ज्ञानी और ज्ञानपूर्वक आचरण करने वाला। (**स्वधावान**) स्व शक्तिवाला। (**आयतन**) आश्रय सहारा। (**दृढ़भ**) किसी से ना दबने वाला (भगवान)*

148. सौन्दर्य की याचना-533

वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्यं सावीः।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम॥ *ऋ॰ ६.७१.६*

533 तर्जः ***मूर्ति अशी साजरी ग उठावरी बांसुरी-1498***

साधक के सद्गुणों की प्राप्ति हेतु, प्रेरणा की
है याचना सविता देव!
सर्वगुण सर्जक हो, सर्वगुण प्रेरक हो
सारे जगत में एकमेव
एक गुण की करें आज से कामना(2)
दे दो सौन्दर्य हे वामदेव!
सत्य-शिव भी यहाँ है अभेद॥
॥साधक के॥

सौन्दर्य श्रेष्ठ जहाँ सत्य शिव साथ हो (2)
निस्वार्थ सेवित जो हो,
आजकल प्रतिदिन ये सौन्दर्य प्राप्त हो
जिसमें प्रशस्त भाव हो
दानादि गुण-समपन्न, हे गुणोध-दाता (2)
गुणी करते हमें निःसंदेह
सत्य शिव भी यहाँ हैं अभेद
॥साधक के॥

प्रज्ञा और कर्म दोनों सौन्दर्य-सेवी हों (2)
मन बुद्धि कर्म हों सुन्दर,
सत्य अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य-प्रेमी होवें
तथाविध होवें प्रवर
सविता देव हैं सृष्टा सौन्दर्य के (2)
करो सर्वांग-सुन्दर अछेह॥
सत्य शिव भी यहाँ हैं अभेद॥
॥साधक के॥

---

*(**अभेद**) समरूप, अविभक्त। (**सेवित**) सेवा किया गया। (**प्रशस्त**) प्रशंसनीय। (**गुणोध**) गुणों का समूह। (**प्रज्ञा**) मेधा, समझ, बुद्धिमत्ता। (**प्रवर**) श्रेष्ठ। (**अछेह**) निरन्तर, हमेशा।*

149. आत्मा और इन्द्रियों का सम्बन्ध

सुमीचीनास आसते होतारः सप्तजामयः। पदमेकस्य पिप्रतः॥

ऋः ९.१०.७

286 तर्जः *मूर्तिमन्त भगवन्त भटेला-1063*

ज्योति इन्द्रियाँ, इन्द्र देवता॥

भजन

ये जो इन्द्रियाँ हैं करें भला
इन्द्रियाँ करें भला॥

॥ये जो॥

कर्मों से आत्मा देहपुरी में आया (2) देह आवास बनाया (2)
जल भोजन वायु के सहारे (2) देह को जीवन मिला॥

॥ये जो॥

पाँच इन्द्रियाँ निज कर्मों से(2) आत्म-अभीष्ट है पाता (2)
तत्व सत्यता, उपादेयता (2) है इन्द्रियों की कला॥

॥ये जो॥

समीचीन इन्द्रियाँ सुखद हैं,(2) उलटी हो दुःख लाये (2)
स्वाद, लालसा गर हो सीमित (2) देह का होता भला॥

॥ये जो॥

दायित्व आत्मा का इन्द्रियों पे,(2) प्रियपद जो हैं दिलाते (2)
उत्तम गति से सिद्धि प्राप्त कर(2) बनतीं ज्योतिप्रदा॥

॥ये जो॥

आत्मा के लिये देह इन्द्रियाँ (2) आत्मा नहीं उनके लिये।
आत्मा पाये मोक्ष का आनन्द,(2) देह पाये अंतशय्या॥

॥ये जो॥

---

*(**उपादेयता**) श्रेष्ठता, उत्तमता, ग्राह्यता। (**समीचीन**) यथार्थ, ठीक, संगत। (**सुखद**) सुख देने वाला। (**लालसा**) इच्छा। (**दायित्व**) फर्ज़। (**प्रियपद**) उच्चपद। (**ज्योतिप्रदा**) ज्योति देने वाली। (**अन्तशय्या**) मृत्यु का बिछौना।*

150. हे भद्र सोम!

त्वं॑ सो॑मासि॒ सत्प॑ति॒स्त्वं राजो॒त वृ॑त्र॒हा। त्वं भ॒द्रो अ॑सि॒ क्रतुः॑॥

ऋः १.९१.५

513 तर्जः *मृदुमन्द हासम मलमलियाति 1479/1771*

हे सोम सितान्शु, है जनक तू है सत्पति
सज्जनों का रक्षक है, दे आनन्द सुख शांति ॥
न्याय पूर्वक करता सब पे शासन, राजन् तू है शक्ति सम्पन्न॥
॥हे सोमः॥

ज्ञान का प्रकाशक है सुख सुभग दाता
उत्तम पदार्थों की करता है व्यवस्था
अवरोधक हैं जो तेरे ज्ञान प्रकाश में (2)
बन ते तू 'वृत्रहा' करता उनका हनन॥ ॥हे सोमः॥

हे सोम! हे चन्द्र! हे शान्त स्वरूप
भद्र है तू सबका शान्ति प्रदाता
आन्तरिक दृष्टि से भी करता है कल्याण (2)
देता है आनन्द, बनके तू आनन्दधन॥ ॥हे सोमः॥

शुभक्रतु कर्मशील है कर्म करता निरन्तर
जगतोत्पन धारण और करे नियोजन
जगत-प्राणियों को कर्माधार पे देता फल (2)
दुष्ट दुर्जन पे करता न कभी भी रहम॥ ॥हे सोमः॥

हे सोम्य! प्रभुवर देना सद्बुद्धि, सत्पुरुष सज्जन हमको बना दे
तेरे प्रेमाशीश के बने हम सुपात्र (2)
ना तो बाधक बने ना ही तोड़ें नियम॥ ॥हे सोमः॥

हे जग के कर्ता धर्ता हे सोमदेव, वेदोपदेश अनुसार चलें हम
जिससे पायें इस लोक में सुख वैभव
तुमसे विनय है प्रभु दे दो सुख शान्ति आनन्द॥ ॥हे सोमः॥

---

*(**सितांन्शु**) चन्द्रमा। (**सत्पति**) सज्जनों का रक्षक। (**वृत्रहा**) शासन करने वाला राजा। (**शुभक्रातु**) शुभकार्य करने वाला।*

151. हे ज्ञानमय सोम!

यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिंल्लोके स्वर्हितम्
तस्मिन्मां देहि पवमानामृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परिस्रव॥

ऋः ९.११३.७

408 तर्जः *मृदुवा गवेतु कवि मिदवा 1436*

आत्मा को दर्शन की चाह
हे सोम! अमृतमय आ तू
हे ज्ञानमय भक्ति भाव
आत्मा में ही प्रकटित हो तू

आत्मा को...

मैं तुम्हारी अद्भुत महिमा जानूँ। (2)
ऊँचे से ऊँचे लोक पे ले जाते मानूँ(2)

आत्मा को...

पहुँचा दे तू जहाँ पे ज्योति ही ज्योति (2)
आनन्दधाम जहाँ प्रेम के मोती ही मोती (2)

आत्मा को...

अमृत के उस लोक में जो है अक्षीण(2)
मृत्यु का जहाँ ना प्रवेश हो ऐसा असीम (2)

आत्मा को...

इतना तो कर सकते हो हे इन्दो! (2)
एक बूँद तरसी, दे देना मेरी चाहत को (2)

आत्मा को...

---

*(**अनात्म**) आत्मा को न जाननेवाला। (**विद्वेषी**) शत्रु। (**विभु**) अत्यन्त महत्ता वाला, महिमावान। (**बर्बरता**) पशुता, जंगलीपन। (**घाती**) हिंसक, मारने वाला। (**वंशगत**) वश में रहना। (**अशिवता**) अकल्याणता। (**प्रसार**) फैलाना, बिखेरना।*

152. हे दिशाओं के पालक

आ पवस्य दिशां पत आर्जीकात् सोम मीढ्वः।
ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत इन्द्रायेन्दो परि स्रव

ऋ॰ ९.११३.२

411 तर्जः *मृदुवा गवेतु कवि मृदुव-1436*

ज्ञानमय भक्तिभाव सूच
आत्मा में होओ परिस्त्रुत॥

कर दे पावक प्यारे सोम प्रभु (2)
ऊँचे से ऊँचा मोक्ष सुख देना तू (2)
हे ज्ञानमय...

चारों दिशाओं में तुम बसने वाले (2)
रस प्रदान, परिपालन करने वाले (2)
हे ज्ञानमय...

अद्भुत! महिमा तेरी, हे ज्ञान चक्षु! (2)
अविनाशी सर्व प्रकाशों के हो केतु (2)
हे ज्ञानमय...

समता ऋजु भाव तुझमें छल भी नहीं (2)
सबके रोम रोम में तुम बहाते हो नदी (2)
हे ज्ञानमय...

सत्य वचन सत्य कर्म वाले नियम (2)
श्रद्धा तप बिना बनते ना प्रेम के भाजन (2)
हे ज्ञानमय...

इन सब से प्राप्त होते भक्ति के भाव
इसके बिना भक्तिरस का होता है अभाव (2)
हे ज्ञानमय...

अटल श्रद्धा, धार के मुझमें आ जाओ।
प्यासे इन्द्र को सोम का अमृत पिलाओ॥ (2)
हे ज्ञानमय...

---

*(**सूच**) पवित्र (परिस्युत)। (**केतु**) मुख्य, नेता। (**ऋजु**) सरल। (**भाजन**) पात्र।*

153. अकेला जाना होता है

यमस्य लोकादध्या बभूविथ प्रमदा मर्य्यान्प्र युनक्षि धीरः।
एकाकिना सरथं यासि विद्वान्त्स्वप्नं मिमानो असुरस्य योनौ॥ *अथ.१६. ५६.१*

590 तर्जः *मेघालय पातिम गुई मोता-2715*

परलोक में तो केवल धर्म ही जाता है
पुत्र कलत्र ना जाया पिता माता है
सामान रह जाएगा सब धरा, प्राणी आए अकेला
और कर्म अनुरूप, निज फल पाता है॥ ॥परलोक में॥

आया कहाँ से और पाई ये काया
ईश्वर के लोक से है तू आया
पहले तू मुक्त था फिर जन्म-मरण में ढला
ईश्वर के न्याय में तू था बँधा
कर्मबन्धन इसका कारण बना
अब इस प्रवाह में बहा और यूँ ही बहता रहा,
कर्मों के कारण जग में तू आता है
कभी हँसता है कभी पछताता है। ॥परलोक में॥

हो जाए मानव तू धीर यदि
कर देगा अन्यों को भी तू सुखी
आनन्द में खुद भी रहे, अन्यों को आनन्द दे
चञ्चल अधीरों में साहस नहीं
वो तो सभी को करते हैं दुःखी
ना खुद वो शांत रहें, सबको अशान्त करें
क्यों ना सदा हम सुधीर बनें
शांति, धृतात्मा ही पाता है॥ ॥परलोक में॥

जीवन मनुष्य का इक स्वप्न है
निज कल्पनाओं में वो मस्त हैं
कल्पनाएँ हैं असत्य स्वप्न के समान अतथ्य
कल्पना छोड़ के जाता है यहाँ
साथ होंगी वासनाएँ वहाँ
कर्मदुरित पापी जाएगा बिन साथी
पापी अकेला ही दुष्कर्म भोगे
सत्कर्म भोग, उसके काम आता है ॥परलोक में...॥

---

*(**कलत्र**) पत्नि। (**धृतात्मा**) धैर्यवान आत्मा। (**अतथ्य**) झूठा।*

154. आध्यात्मनुभव

३ २ ३१ २ ३ १ २ २ ɾ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

शृण्वो वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः। चरन्ति विद्युतो दिवि॥

साम. ८६४

289 तर्जः *मेजवाने पाँदळे ओढ्या माधव तमे-2711*

साधक की साधना परिपक्व होके मन को (2)
शब्द-आदेश से जोड़े॥
विमल आदेश प्रभु के, साधक-मनायु सुनते
दौड़े ना बाहर मन के घोड़े॥

॥साधक की॥

पाप-ताप में झुलसकर आत्मा-अशांत तरसा (2)
वृष्टि बन धर्म मेघ बरसा
ज्वाला अधर्म की वृष्टि से शान्त हो गई (2)
पवित स्नान को मन तरसा
धुलती गई, झुलसी हुई मन की ये कालिमा (2)
बुझ गये पापों के शोले॥

॥साधक की॥

बादलों के बीच नभ में चमके बिजुरिया(2)
चकाचौंध हुए नैन मूँदें
किन्तु साधक के देहाकाश की बिजुरिया(2)
खोले अंतः नैन, मन गूँजे
कौन समझाये ब्रह्मयोग की महिमा (2)
जाने जो, प्रभु को न छोड़े॥

॥साधक की॥

---

*(**शब्द-आदेश**) ईश्वरीय वेद श्रुतियाँ (प्रभु आदेश के रूप में)। (**परिपक्व**) पूर्ण रूप से तैयार। (**पवित**) शुद्ध, पूत, पवित्र, सोमस्वरूप। (**कालिमा**) कालिख। (**शोले**) आग की उठती लपटें। (**देहाकाश**) शरीर में स्थित आकाश। (**ब्रह्मयोग**) ईश्वर से जुड़ा आध्यात्मनुभव। (**बिजुरिया**) बिजली, तड़ित। (**अंतःनैन**) आन्तरिक दृष्टि। (**धर्ममेघ**) धर्म रूपी कल्याणकारी बादल या पर्जन्य।*

155. हम किसके नाम का स्मरण करें?

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च॥

ऋः १. २४.१

902 तर्जः *मेले विन्निन मुत्तत्तारी-राग देस 943/2453*

तेरी लीला उत्तम न्यारी
जीवनदायी आनन्दकारी
आ के तुम हृदय में समाओ
जब हम तुमसे कहने जाएँ
इससे पहले हम समझाएँ
मन की बातें पहले जान जाओ
क्या माँगें तुमसे हे अग्ने!
माता-पिता हो परम स्नेही
प्रेम तुम्हारा हृदय में बसाओ॥

॥तेरी लीला॥

चक्षु कर्ण, तेरी विद्या, जानने को हरदम तरसे
अग्निदेव चारु भगवान
अग्निदेव है सुखदायक, करता अदिति के लायक
चाहे दिलाता आनन्द धाम
माँ अदिति भी सुखदायक
और अग्निदेव भी पावक
दोनों को है नमन हमको दो वरदान

॥तेरी लीला॥

या तो माँ की गोद में धरते, या हृदय में आनन्द भरते
अग्निदेव तुम ही हो महान
भक्त स्तुति प्रार्थना करते
उन्हें अदिति-गोद में धरते
करते हम माता को प्रणाम
तेरी वाणी है स्नेही
हे अग्निदेव विदेही
लेके तुम जाते हो भक्त को मोक्षधाम

॥तेरी लीला॥

156. धर्म के लक्षण

सं ग॑च्छध्वं॒ सं व॑दध्वं॒ सं वो॒ मनां॑सि जानताम्।
दे॒वा भा॒गं यथा पूर्वे॑ संजाना॒ना उ॒पास॑ते।

ऋः १०. १९१.२

894 तर्जः *मेले विन्निन मुत्तारी-943/2453*

ऐ प्यारे मनुष्य लोगों, उसी धर्म को ग्रहण करो जो
पक्षपात रहित है न्याय प्रधान
उससे ना विपरीत चलो तुम, जिससे बढ़ता जाए सुख धन
सम्मति रहे परस्पर निष्ठावान।
विरुद्धभाव को छोड़ परस्पर प्रश्नोत्तर-संवाद करो तुम।
सब सत्यों का वर्तित वेद प्रमाण॥

॥ऐ प्यारे॥

अपने सही वेदज्ञान को सतत दिनों दिन बढ़ाओ
होवे मन ज्योतित मृदु-महान
जिससे सतत ज्ञानी होकर नित्य रहें आनन्द रत
बनें धर्म हेतु निष्काम
जगत में जो भी हैं धर्मी, बनते हैं वो ही सुकर्मी
वेदों से शिक्षा लेकर आते हैं प्रभु की शरणी
इसलिये पा लो ज्ञान और बनो सत्यवान॥

॥ऐ प्यारे॥

तीन रीत से नित धर्म, करता जाता आत्मोत्थान
प्रथम हैं शिक्षा के विद्वान
दूसरा आत्मा की शुद्धि, सत्य ज्ञान की शुभेच्छा
तीजा वेद का निष्ठावान
वेदों की ही शिक्षा से होता है बोध सच का
वरना अज्ञान के कारण जीवन तो बोझ ही बनता
सब विचार होवें आदान-प्रदान निष्ठावान॥

॥ऐ प्यारे॥

(वर्तित) *संपादित, चलाया हुआ, ठीक किया हुआ।* ***(निष्ठावान)*** *श्रद्धा से युक्त।*

157. धर्म के लक्षण

स॒मा॒नो मन्त्रः समितिः समा॒नी स॑मा॒नं मनः॒ स॒ह चि॒त्तमे॑षाम्।
स॒मा॒नं मन्त्र॑मभि मन्त्रये वः समा॒नेन॑ वो ह॒विषा॑ जुहोमि॥ *ऋः १०.१९१.३*

895 तर्जः *मेलेविन्निन मुत्ततारी...943/2453*

ऐ प्यारे मनुष्य लोगो, जो विचार हैं सत्य असत्य के
सभी परस्पर के विचार हों वेद-समान
धर्मयुक्त हों सबके हित में मिलकर सोचें जो हों ऋत में
जिसमें सबके सुखों का हो वरदान
जिसमें सारी मानव जाति का बढ़ता जाए ज्ञान और मान
विद्याभ्यास ब्रह्मचर्य के हों काम ॥ऐ प्यारे॥

अच्छे अच्छे लोगों की बनी सजग सभाओं से
राज्य प्रबन्धक हों अतिगुणवान
जिसमें बुद्धि बल पराक्रम आदि सारे गुण बढ़ जाएँ
उत्तम मर्यादा शुद्ध विचार
मन होवे अविरोधी, सुख-संयम के सहयोगी
समतुल्य समझें सबको, ना स्वार्थी हों न लोभी
संकल्प और विकल्प का मार्मिक होवे ज्ञान॥ ॥ऐ प्यारे॥

मन भरा हो संकल्पों से होवें सदा ही पुरुषार्थी
अविरूद्ध दृढ़ हो धर्म-ज्ञान
शुभ विचार से हो अंकित यथावत हमारे चित्त पर
निःस्वार्थ मन चित्त हों समान
देवे लोगों को सुख ही, ना चेष्टा करें दुःख की
बनके सबका उपकारी इच्छा रखें अमृत की
हम करें न्याय दया, सत्य का ये विधान॥ ॥ऐ प्यारे॥

कहते प्यारे कृपा निधान! ले लो शुभ व्रतों का ज्ञान
मेरी आज्ञा का रख लो मान
सत्य का हो जाए आगम और असत्य का हो नाशन
हो कर्म-त्रुटियों का निदान
तुम लेन देन को समझो इसे धर्मयुक्त ही मन दो
व्यवहार करो ना अनमन, संयोग सत्य का कर लो
रच दिया है मैंने ही तो सत्य का ही संविधान॥ ॥ऐ प्यारे॥

158. धर्म के लक्षण

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥

ऋ: १०. १९१.४

896 तर्जः ***मेले विन्निन मुत्तारी-943/2453*** ***राग-देस***

ऐ प्यारे मनुष्य लोगों जितना है सामर्थ्य तुम्हारा
मिल के धर्म के संग सुख बाँटो
तुम जीवों के सुख के हेतु सदा करो पुरुषार्थ हृदय से
त्याग न कराना कभी धर्म का प्यारो,
रहें तुम्हारे मन हृदय भी बिना विरोध के प्रेमासक्त
मन को प्रेम संयम में बाँधो(2)

॥ऐ प्यारे॥

कामः (1)

पहली सोच मन में रखना आचरण को शुद्ध करना
रखना निस्वार्थ भावना।

सङ्कल्प

सुख समृद्धि विद्या आदि विविध गुणों के लिए ही
निज पुरुषार्थ को राधना

विचिकित्सा

जो जो हैं कार्य शंकित, यथावत निश्चित करके
विचिकित्सा के बल पे ही निर्णित बुद्धि को करके
तीनों स्तम्भ धर्म के हैं ठीक से धार लो॥

॥ऐ प्यारे॥

(श्रद्धा) (2)

सत्य धर्म ईश्वर आदि शुभ गुणों के सार्थक साथी
रखना है इनमें ही विश्वास
अविद्या कुतर्क में रहना, ईश्वर पे शंका करना
अश्रद्धा अन्याय है निपात।

(धृति)

सुख दुःख हानि या लाभ इन सब में रखना धीरज
विचलित कभी ना होना है यही मानव की सीरत
कष्ट संकट विपद् दुःख में ना हिम्मत हारो॥

॥ऐ प्यारे॥

(ह्री)

आचरण असत्य का करना, पवित पुण्य काम से बचना
दुरित मन का ही है ये असर
श्रेष्ठ गुणों को धारण करने वाली श्रेष्ठ बुद्धि को
धीः कहते धार ले सत्वर

(भीः)

जो आज्ञा है ईश्वर की ऋत सत्य का पालन करना
और पापाचरण के पतित विचारों से नित डरना
रख के साक्षी ईश को जन्म को तार लो॥

॥ऐ प्यारे॥

इस प्रकार धर्म का सेवन करके पा लो अनुपम ज्योति
अन्यों का करते रहो भला
इक से दूजे का सुख बढ़े ऐसे कर्म करो बड़े,
होवे परहित में जी लगा
सुख के दे मन हर्षा लो, ना वैमनस्य ईर्ष्या लो
कर कर के सबकी सेवा, बहे मन में प्रेम का रेला
आओ मिल जुल के नित सबका हित साध लो॥

॥ऐ प्यारे॥

---

*(**राधना**) पूरा करना। (**निपात**) गिरा हुआ। (**सत्वर**) शीघ्र, जल्दी। (**ऋत**) सृष्टि, नियम। (**पतित**) गिरा हुआ, नीच। (**रेला**) बहाव।*

159. हम कर्म करें

ते घेदग्ने स्वाध्योऽहा विश्वा नृचक्षसः। तरन्तः स्याम दुर्गहा॥

ऋ. ८.४३.३०

296 तर्जः *मैं केवल तुम्हारे लिए गा रही हूँ-2713*

तुम्हारे बताये ही कर्म करें हम, (2)
जियें, तो जियें तेरे अनुयायी बन,
सुकर्मों से बन जाये अनमोल जीवन(2)

॥तुम्हारे॥

बड़े-छोटे काज हों तुझमें समर्पित (2)
पतित कर्म जीवन के सारे हैं अनुचित
जियें हम तेरे दीप की ज्योतियाँ बन(2)

॥तुम्हारे॥

हों दिन रात आठों पहर तेरा पूजन(2)
यही तो है सुखमय प्रवर शान्त जीवन
तुम्हारे ही आश्रित(2) पले साँस-धड़कन(2)

॥तुम्हारे॥

हर इक वस्तु का होवे निर्लेप दर्शन(2)
तो दृष्टि में होगा धीरज और संयम
तभी दुर्गहों से हो जावेगा तरण (2)

॥तुम्हारे॥

बनें जो 'नृचक्षस' उसे भय ना खाये (2)
हर इक दिन प्रसंग सुतर होता जाये
ऐसी कृपा शक्ति बरसाना भगवन् (2)

॥तुम्हारे॥

---

*(**अनुयायी**) पीछे चलने वाला, अनुसरण करने वाला। (**काज**) कार्य, काम। (**पतित**) अधम गिरा हुआ। (**निर्लेप**) अनासक्त। (**दुर्गह**) बाधा, रूकावट। (**तरण**) निस्तार, उद्धार। (**नृचक्षस्**) मनुष्यों को ठीक से पहचानने वाला। (**सुतर**) सुख से पार किया जाने वाला।*

160. प्रभु को आर्य ही प्राप्त कर सकता है

मूर्धा दिवो नाभिरग्निः पृथिव्या अर्धाभवदरती रोदस्योः।
त्वं त्वां देवासोऽजनयन्त देवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय॥

ऋः १. ५९.२

77 तर्जः *मैं तो इक ख्वाब हूँ-498*

राग-विलासरवानी-तोड़ी

तू तो इक आर्य है वेदों से सदा प्यार तू कर
ज्ञान को पाके सदाचार से व्यवहार तू कर॥

मन की हलचल व चञ्चलता अशांत तुझको करे
ये दुराचार दिव्यता से तुझे दूर करे
गुण आर्यत्व के संयम से ही विस्तार तू कर
॥तू तो॥

कर दुराचार का तू त्याग, कर सरल जीवन
तेरा वैराग्य दिलायेगा तुझे प्रभु प्रीतम
अपने जीवन में संस्कारों का प्रतिकार ना कर
॥तू तो॥

आर्य वैश्वानर अग्नि को प्रकट करते हैं
परम पुरुष को हृदय की गुहा में धरते हैं
आर्य, मन इन्द्रियों के संयम से, पा ईश्वर
॥तू तो॥

दिव्य ज्योति को ही निष्काम ज्ञानी पाते हैं
सर्वव्यापक है जो ईश्वर, उसे ही ध्याते हैं
तत्त्वज्ञानी महात्मा को मिलते वैश्वानर
॥तू तो॥

---

*(**गुहा**) गुफा। (**वैश्वानर**) सर्व जन हितकारिन्। (**आर्य**) ज्ञानवान सदाचारी, धर्मात्मा को आर्य कहते हैं जो परम ज्योति को प्राप्त कर सकता है। (**तत्वज्ञानी**) सत्य को जानने वाला।*

161. देखो सोम प्रभु की अनोखी सृष्टि

अयं द्यावापृथिवी वि ष्कभायदयं रथमयुनक्सप्तरश्मिम्।
अयं गोपु शच्या पक्वमन्तः सोमो दाधार दशयन्त्रमुत्सम्॥

ऋः ६.४४.२४

237 तर्जः ***मैं तो साँवरे के रंग राती-2714 (राग-कलावती)***

प्रभु दीख रहा है विश्वव्यापी(2)
द्यावा पृथिवी का वो है परिभू
हरदिश में जिसकी है ख्याति॥

॥दिख रहा॥

वन उपवन गिरी सरित सिन्धु का (2)
भार तो वसुधा उठाती
पर वसुधा को प्रभु की शक्ति (2)
हर पल रही चलाती॥

॥दिख रहा॥

सप्तकिरण वाले रवि-रथ का (2)
चालक प्रभु अभ्यासी
अस्त प्रतीची में रवि होकर (2)
दौड़, पहुँचता प्राची॥

॥दिख रहा॥

गौ के स्तनों में दूध छलकता (2)
घास चारा जो खाती
सोम प्रभु की महिमा ही तो (2)
दूध की नदियाँ बहाती

॥दिख रहा॥

(परिभू) *परिपालक।* ***(वसुधा)*** *पृथ्वी।* ***(प्रतीची)*** *पश्चिम।* ***(प्राची)*** *पूर्व।*

162. व्यापक सोम

असृक्षत॒ प्र वा॒जिनो॑ गव्या सोमा॑सो अश्व॒या। शु॒क्रासो॑ वीर॒याशवः॑॥

ऋः ९.६४.४

616 तर्जः *मैत्रीनो अजुनका–*

वाणी में जादू तो सन्त जगायेगा, अपने तक नहीं प्रभाव परिमित
स्त्रोत संजीवन का अनुगृहीत, तेज-शक्ति से जो है आनीत
रसमय स्फूर्तिदायक नीक
क्रियात्मक शिक्षा सिखायेगा॥ ॥वाणी में॥

पवित्रता उसकी इतनी महती, देह में कत सीमित रह सकती?
प्रथित प्रवचन से सर्वाच्छादित, भ्रम बाधा विघ्नों को हरती
संत क्षेत्रज्ञ बढ़ जायेगा॥ ॥वाणी में॥

निज वाणी के प्रहार से तब, कर देगा दुर्गुणों को हतप्रभ
कोई संकोच कृपणता उसके, उपदेशों के सम न ठहरे
भासुर भाव वो जगायेगा॥ ॥वाणी में॥

वैर-द्वेष का नाश वो करता, शत्रु समयक, मित्र ही बनता
और विचारक समचित बनता, नवयुग का निर्माण सन्त करे
विश्व शांति तब पायेगा॥ ॥वाणी में॥

ज्यों-ज्यों आगे समय बीतता, आध्यात्मिक संजीवन बढ़ता
अधिक तेज व्यापक हो निखरता, प्रभु प्यारा प्रजा-प्यारा बनता
क्रांति संत ही लायेगा॥ ॥वाणी में॥

यही 'शुक्र' है यही है 'वाजी', आशुसोम वो वही प्रतापी
शक्ति से शुक्र, वाज से वाजी, सवन से सोम बने अनुरागी
रंग सन्त का चढ़ जायेगा॥ ॥वाणी में॥

---

*(**परिमित**) अल्प, थोड़ा। (**अनुगृहीत**) जिस पर कृपा दिखाई गई हो। (**आनीत**) लाया हुआ। (**नीक**) स्वच्छ। (**प्रथित**) प्रसिद्ध। (**हतप्रभ**) प्रभारहित। (**भासुर**) प्रकाश देनेवाला। (**शुक्र**) अगिन। (**वाजी**) शक्तिशाली।*

163. व्रत पालकों के सखा

विष्णो॒र्नु कं॑ वी॒र्या॑णि॒ प्र वो॑चं॒ यः पार्थिवानि विम॒मे रजां॑सि।
यो अस्क॑भाय॒दुत्त॑रं स॒धस्थं॑ स॒धस्थं॑ विचक्रमा॒णस्त्रे॒धोरु॑गा॒यः॥

ऋः १.२२.१९

631 तर्जः *मोली मोली कातिरुन्दर कड़ी कुरमग-1478*

कोटी-कोटी धन्यवाद तुझे प्रीतम
साथ तू सभी के रहे जनम जनम
सारे जगत का हितैषी सखा
निःस्वार्थ न्याय युक्त, सर्वहितकारी प्रभु,
परिपूर्ण नियमबद्ध तेरा शासन(2) ॥कोटि कोटि॥

सब जीवों का सर्वदा और सर्वत्र
सच्चा साथी है और सच्चा ही मित्र
तेरी कृपा से अहिंसा अस्तेय,
ब्रह्मचर्य और सत्य का लेते हैं व्रत (2) ॥कोटि कोटि॥

जुड़वाँ सखा ही है सारे जीवों का तू
ऐसा सखा तो जगत में नहीं
अन्य जो मित्र हैं अस्थायी अस्थिर हैं
स्वार्थ के वश हैं कहीं ना कहीं (2) ॥कोटि कोटि॥

दिव्य व्यवस्था प्रभु की निहारें जो
मुग्ध वो इन्द्र पे होवे ना क्यों?
प्रीतम सखा के प्रति हो आवर्जित
उसको बसाये हृदय में ना क्यों? (2) ॥कोटि कोटि॥

अब तो व्रतों का परिपूर्ण पालन
भक्त-हृदय में समाये सहज
सत्य अहिंसादि व्रत के पालन की ही
जीवन की बगिया में छाये महक॥ ॥कोटि कोटि॥

---

*(**आवर्जित**) त्यक्त छोड़ा हुआ।*

164. भगवान परिश्रमी की रक्षा करते हैं

यस्त इध्मं जभरत्सिष्विदानो मूर्धानं वा ततपते त्वाया।
भवस्तस्य स्वतवाँः पायुरग्ने विश्वस्मात्सीमुघायत उरुष्य॥ *ऋः ४.२.६*

576 तर्जः *मोली मोली कातिरुन्दर गणी कोरमग-राग-भूपाली 1478*

मेरा मेरा में ही भरा हुआ स्वार्थ है
समझे जो 'इनन्नमम्' निस्वार्थ है
लाए जो समिधाएँ प्रभु के लिए
ऐसे तपी को श्रयण प्राप्त है
होता कभी ना याज्ञिक निराश्रय
प्रभु से रक्षित सदा सर्वदा निर्भय
हृदय में उसके, प्रयत प्रकाश है(2) ॥मेरा मेरा॥

ऐश्वर्य प्राकृतिक, जीवों को अर्पित
सुख के हेतु, प्रभु ने दिया है,
स्थूल या सूक्ष्म या अणु-परमाणु में
निज स्वार्थ प्रभु का अपगम रहा है,
जीव पाए भोग या भोग छोड़ मोक्ष
प्रभु-दया-जीव का पुरुषार्थ है (2) ॥मेरा मेरा॥

जीव के कर्मो के हेतु मानो
नये नये संसार रचता है
कर्त्तव्य-भ्रष्ट भोगी जीव को प्रभु
कर्त्तव्य-पथ पे ला सकता है
हर बार जीव को चेताता है प्रभु
उसके हर कार्य में परमार्थ है(2)। ॥मेरा मेरा॥

भगवत-प्रीत वही कर सकता है
जिसमें दान की क्षमता है
जिसके दान में भाव निष्काम के
मिलती उसे प्रभु-ममता है
'तेरा तुझको सौंप दिया प्रभु!
हे महादानी, तेरे अनुयात हैं॥ (2)

---

*(**समिधा**) प्रकाशित होने वाला ईंधन।(**इदन्नमम्**) ये मेरा नहीं है।(**श्रयण**) आश्रय, शरण। (**प्रयत**) पवित्र, शुद्ध। (**अपागम**) दूर रहना, हट जाना। (**अनुयात**) अनुगामी, पीछे-पीछे चलने वाला।*

❑❑❑